RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 29 अगस्त 2016

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका सितम्बर 2016

चाँद न सही छुएँ चाँद की छाया
हरी भरी घासों के मन में आया

- प्रभात

मूल्य ₹ 50

चकमक कविता कार्ड

पढ़ो और फिर चाहो तो अपने दोस्त को इसी कार्ड के दूसरी तरफ एक चिट्ठी लिखकर भेज दो।

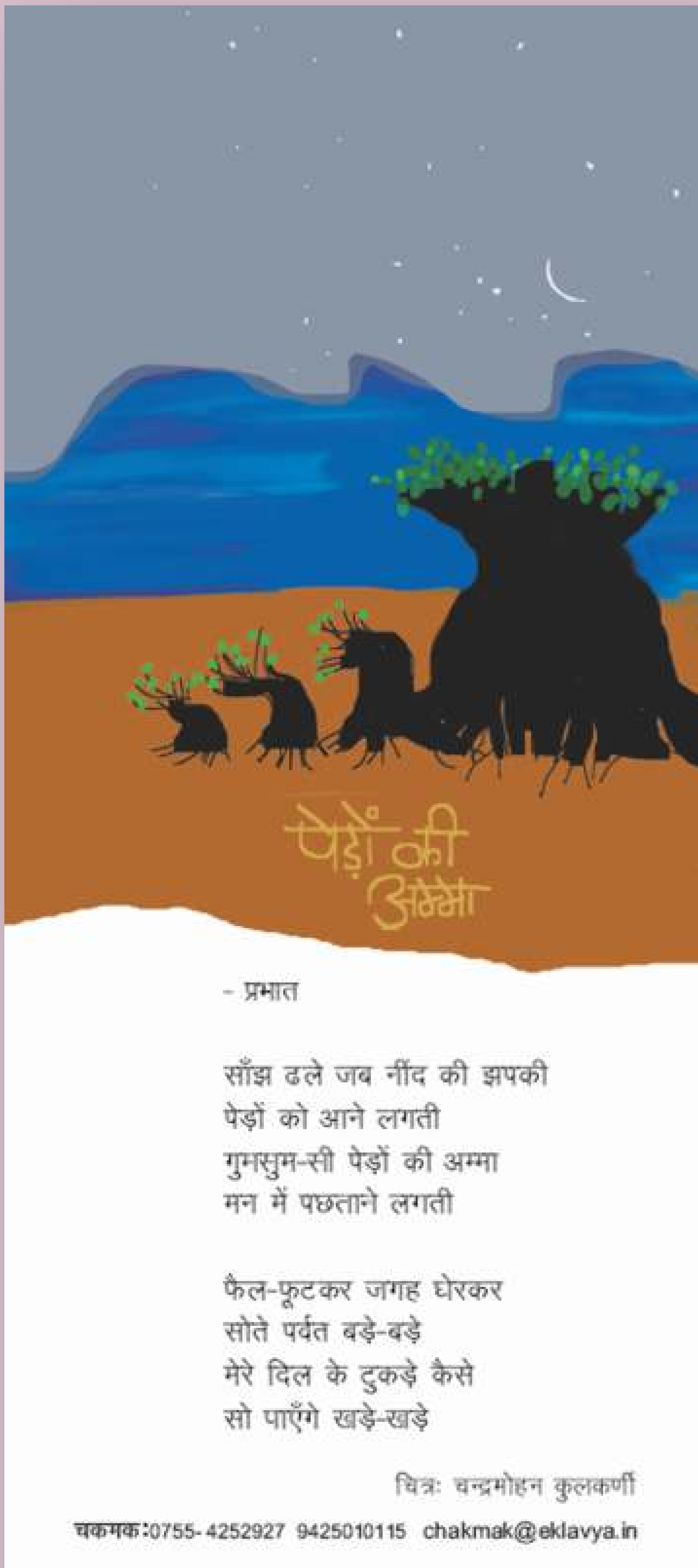

कविता कार्ड के
चार गुच्छे।
एक गुच्छे में
बारह कविताएँ।
एक गुच्छे की कीमत है
सिर्फ पचास रुपए।

इन्हें मँगाने के लिए तुम चकमक के पते पर लिख सकते हो। या हमें फोन कर सकते हो। या चाहो तो सीधे ऑनलाइन मँगा लो - Http://www.eklavya.in/pitara/chakmak_kavita_cards

बाल विज्ञान पत्रिका
चकमक
अंक 360 सितम्बर 2016

इस अंक में

4 बच्चों की पहल - थिरुवनम्मलाई के बच्चे
9 एक था हाजी एक था नाजी - स्वयं प्रकाश
10 रोने की जगह - प्रयाग शुक्ल
12 मच्छर को मलेरिया होता है या नहीं - सुशील जोशी
14 टोनी की डायरी
16 प्यारे भाई रामसहाय - स्वयं प्रकाश
18 अन्याय के विरुद्ध - चेखव
20 पीएनजी के नखरे - रमाकान्त अग्निहोत्री
22 पूड़ियों की गठरी - कृष्ण कुमार
26 रमजान का पहला दिन - ज़ेबा खातून
31 बोली रंगोली
36 जंगल में मंगल : दो बहनों की मसाईमारा यात्रा - बीना काक, कमला भसीन
41 मेरा पन्ना
42 स्कूल के दिन - चन्दन यादव
44 बरसाती संगीत सुनाते फूलों से बने - किशोर पँवार
46 नवाब साहब और पेट का दर्द - हिमांशु बाजपेयी
48 चित्र पहेली

मसाईमारा अभयारण्य का रोमांच (पेज 36 पर)

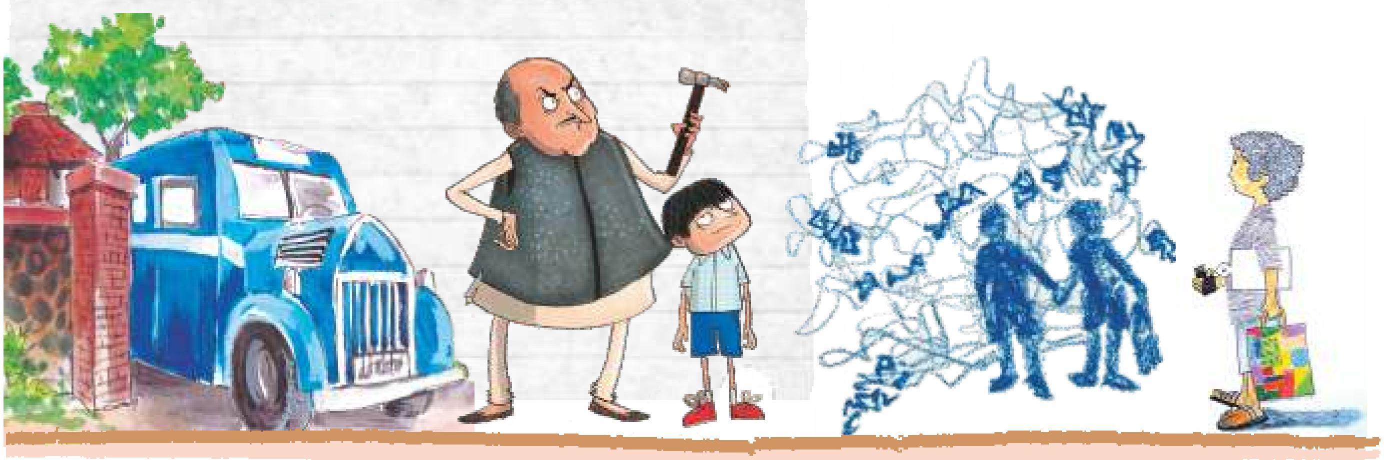

आवरण चित्र
प्रशान्त सोनी

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

वितरण
झनक राम साहू

तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी के वित्तीय सहयोग से विकसित

हाशिए के चित्र
श्वेता नम्बियार

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव
ब्रजेश सिंह

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

एक प्रति :	50.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

cut the
old forest
I have seen Eurassi
eagle owl found on the
Arunachala hill in the
forest with my
freinds. This is its feath
I found.

बच्चों की पहल

सलाम!

इस पहल से फिलहाल पेड़ों की कटाई पर रोक लगा दी गई है। यह केस फिलहाल कोर्ट में है।

चकमक के इन पाठकों की पहल को हमारा सलाम! हम अपने सभी पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे भी अपनी इस तरह की पहलें चकमक से शेयर करें।

नहीं चाहिए पेड़ों को काट कर रास्ता...

पूर्णिमा के दिन तीर्थयात्री थिरुवनम्मलाई पहाड़ी की परिक्रमा करते हैं। उन्हें आसानी हो और पर्यटन को बढ़ावा मिले इसलिए गिरीवालम पथ को चौड़ा कर 36 फीट करने की योजना है। पर तब यह रास्ता सोनागिरी के बीच से गुज़रेगा। सोनागिरी जो कई दुर्लभ पक्षियों और जानवरों (जैसे सिवेट बिल्ली, मॉट्ल्ड वुड उल्लू, जंगली खंजन आदि) का घर है। जहाँ हर साल जगह-जगह से मेहमान पक्षी आते हैं। जहाँ पहाड़ी झरनों से बना एक विशाल तालाब है। यह रास्ता हमारे इन सब पड़ोसियों के लिए घातक साबित हो सकता है। पेड़-पौधों को तबाह कर सकता है। साथ ही थिरुवनम्मलाई की सांस्कृतिक विरासत को भी बर्बाद कर सकता है।

थिरुवनम्मलाई के कई स्कूलों के बच्चे इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं। वे एकजुट हैं। उन्हें इस जंगल और उसके बाशिन्दों से प्यार है। वे इन्हें हमेशा आबाद, फलता-फूलता देखना चाहते हैं।

अगर तुम्हारे आसपास भी इसी तरह का विनाश का खेल चल रहा है तो थिरुवनम्मलाई के बच्चों के साथ ज़रूर साझा करें...

– पूर्णिमा, थिरुवनम्मलाई की एक शिक्षिका

चित्रः निर्मल

by expanding the girivalam road. In particular, my concerns are expressed towards the sacred grove called Sonagiri, which is one of the heaviest losses the hill will face. The sacred grove is one of the last remaining patches of the hill that still stands to this day

DO NOT CUT SONAGIRI FOREST

प्रिय सर/मैडम,

मैं लिख रहा हूँ यह बताने कि लिए पेड़ काटना अच्छा नहीं है। वो नहीं तो हम भी नहीं हो सकते। गिरिवलम पथ जैसा है वैसा ही ठीक है। उसे बड़ा करने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं यहीं पला-बड़ा हुआ हूँ। अगर तुम बहुत-सा पैसा और दिलचस्पी इसमें डालोगे तो भी मैं अपनी बात पर अड़ा रहूँगा। मैं जिस स्कूल में पढ़ता हूँ वहाँ हम गणित, विज्ञान... वगैरह वगैरह से भी ज़्यादा ज़रूरी चीज़ों के बारे में सीखते हैं। जानवरों, पक्षियों, कीड़ों, पेड़ों और भी जाने कितने सजीव अपना घर खो बैठेंगे। मैं आपको जंगल को कोई भी नुकसान नहीं करने दूँगा।

– निर्मल, 10 साल

चित्रः वी. रम्या

चित्रः एम. प्रिंस कुमार

Dear sir/madom,
I am writing this letter because it's wrong to cut trees, without them we wouldn't exist.
The girivalam path is good as it is, there is no need to make it bigger. I grew up here and even if you put a lot of intrest and money into this I stand my position. I study at marudam farm school which is an environmental school we learn more inportant stuff than maths science and so-on. Animals, birds, reptiles, amphibians, trees and many other living creatures will lose their homes. I will not let you do any harm to the forest,
Nirmal, 10 years of age.

हिरण जो मुझे हर हफ्ते दिखते हैं मर जाएँगे अगर आप पेड़ काट देंगे।

पेड़ मत काटिए

– कलाइवानी, छठी

– दर्शिनी

प्रिय सर,

मैं आपसे अपने मन की एक बात कहना चाहता हूँ। थिरुवनम्मलाई पहाड़ी में इन दिनों लगातार पेड़ काटे जा रहे हैं। गिरिवलमपथ जानेवाली सड़क इसी पहाड़ी से जाती है। उसे चौड़ा करने के लिए यह कटाई हो रही है। मुझे सबसे ज़्यादा चिन्ता सोनागिरी की है। इस कटाई का सबसे ज़्यादा नुकसान यहीं होगा। पिछले बहुत सारे सालों से इस पहाड़ी के जंगल नष्ट किए जा रहे हैं। पर सोनागिरी अब तक बची रही।

मैं अकसर इस जंगल में गुज़रता हूँ। कितनी सारी चीज़ें हैं जो मुझे यहाँ रोक लेती हैं। इतनी तरह-तरह के कीड़े, पक्षी, पेड़, पौधे, तितलियाँ, टिड्डे, भौंरे, हैलीकॉप्टर... हैं यहाँ। वो सब यहीं रहते हैं। यही उनका घर है। बहुत से लोगों को इनके बारे में पता नहीं है। उन्हें जो बंजर कँटीली झाड़ियाँ लगती हैं वो दरअसल अनगिनत जीवों का ठिकाना हैं। और हर साल इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। 12 फुट लम्बे रॉक पाइथन (अजगर), छिपकलियाँ सभी इसे आबाद किए हुए हैं। इसके अलावा हज़ारों किस्म के पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ यहाँ फल-फूल रही हैं।

इस पहाड़ी के जिन हिस्सों में सालों से कटाई चल रही थी वह भी धीरे-धीरे अपनी पहली-सी छटा पा रहा है। इस समय उनके कट जाने से इतना बड़ा नुकसान होगा जिसे पूरा नहीं किया जा सकेगा। जंगल के बीच रास्ता होने से जानवर और जंगल दोनों का नुकसान होगा। जंगल की शान्ति और माहौल तहस-नहस हो जाएगा। यहाँ रहनेवाले लाखों जीवों की ओर से मैं यह खत लिख रहा हूँ। यह उनकी ही आवाज़ है। मैं थिरुवनम्मलाई की ओर से भी इसे लिख रहा हूँ।

– माधवन ए. पी., 16 साल

पेड़ काटने के बारे में सोचना भी नहीं।

आप कितने कितने पेड़ हर रोज़ काटते जा रहे हैं।

पेड़ इंसानों से ज़्यादा काम में आते हैं।

– दर्शिनी, पाँचवीं, 10 साल

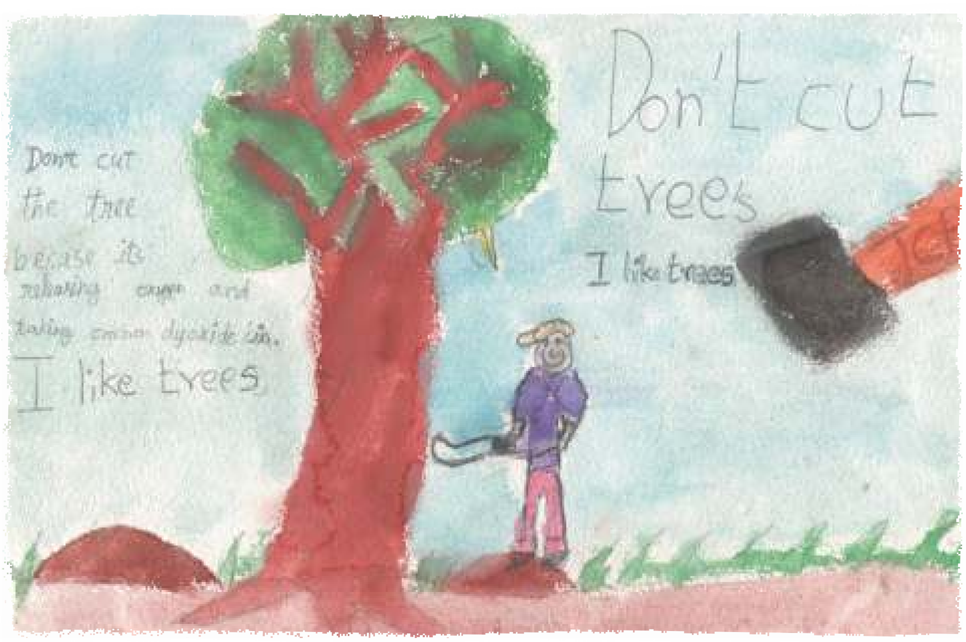

चित्रः जे. जयसूर्या

रोने की जगह

प्रयाग शुक्ल

मैं सीढ़ियों पर बैठा रो रहा था। अब यह न पूछना कि क्यों रो रहा था! क्योंकि वह तो अब याद ही नहीं है। शायद किसी ने डाँटा था और मैं रो रहा था। या शायद किसी ने मारा था और मैं रो रहा था या शायद किसी से झगड़ा हुआ था, कुछ हाथापाई या धक्कम-धुक्की, और मैं रो रहा था! वजह जो भी रही हो, यह अच्छी तरह याद है कि मैं सीढ़ियों पर बैठा था और रो रहा था! तब मैं सात-आठ साल का था। यह भी याद है कि रोने की यह जगह मैंने ही चुनी थी। उस वक्त मुझे किसी के ढाढ़स की, प्यार की ज़रूरत थी। इस बात की ज़रूरत कि कोई मुझसे धीरे-से पूछे, "क्यों रो रहे हो भाई?" और कोई भय्या, चाचा अपने रूमाल से, या कोई भाभी-चाची-दीदी अपने आँचल से, मेरे आँसू पोंछ दे। मुझे पूरी उम्मीद थी कि कोई सीढ़ियाँ चढ़ते हुए या सीढ़ियों से उतरते हुए ऐसा ज़रूर करेगा। पर, नहीं, यहाँ तो उलटा ही हो रहा था जो भी सीढ़ियों से चढ़ता वह एक हलकी-सी चपत मेरे गाल पर लगाता, और कहता, "चुप करो, रोना नहीं।" और सीढ़ियाँ चढ़ जाता। यही हाल सीढ़ियों से उतरनेवालों का भी था। वे भी बस एक सेकंड रुकते, गाल पर चपत लगाते, और यही कहकर कि "बन्द करो यह रोना।" सीढ़ियाँ उतर जाते। पर रोना था कि थमने की जगह, बढ़ जाता था। तुम्हीं सोचो अगर हर दूसरे मिनट किसी के गाल पर एक चपत पड़े, भले ही वह चपत ज़ोरदार न हो, तो रोते हुए लड़के का रोना रुकेगा कि और बढ़ जाएगा! जब दस-पन्द्रह मिनट से ज़्यादा बीत गए और मुझे सात-आठ बार चपत पड़ चुकी तो मैंने सोचा, "अरे, उठो इन सीढ़ियों से! यहाँ तो लेने के देने पड़ रहे हैं।" रुलाई थी कि थमने का नाम ही नहीं ले रही थी।

झूठ नहीं कहूँगा, सच-सच बताऊँगा। मैं उठा, अपने ही हाथों से अपने आँसू पोंछता हुआ, नीचे उतर गया। इस बात को सत्तर साल बीत चुके हैं। पर, भला ऐसी बातें कोई भूलता है। तब हम कलकत्ता में रहते थे। अरे, उसी कलकत्ता में जो अब कोलकाता कहकर पुकारा जाता है। हम जिस घर में रहते थे उस घर में बच्चे-बड़े-बुज़ुर्ग सब मिलाकर कोई चालीस-पैंतालीस लोग तो रहते ही होंगे। मेरे पिता के छह भाई थे। सब साथ रहते थे। बस तब तक शायद उनके दो-तीन भाइयों की शादी नहीं हुई थी, पर, बाकी सबके बच्चे भी थे। हमारी तीन दुकानें थीं। एक दुकान किताबों की थी, जहाँ से सत्यजित राय भी किताबें खरीदने आते थे। "न्यू मार्केट" में। जो भी हो, घर में मैं बराबर एक भीड़-सी देखता था। एक मेला-सा ही तो था वह!

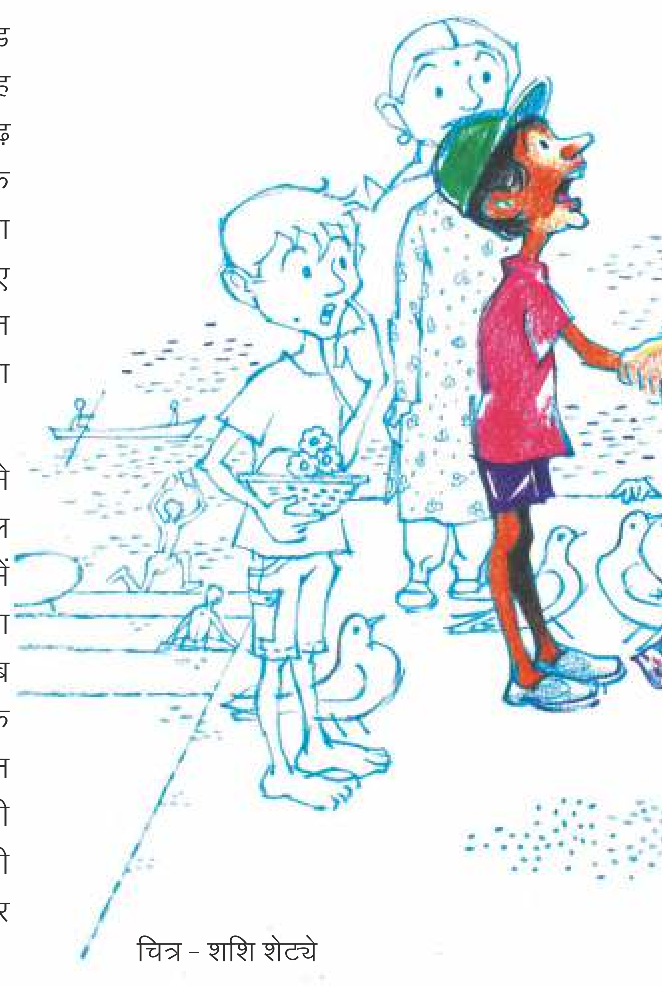

चित्र - शशि शेट्ये

जब मैं सुबकता हुआ उस दिन सीढ़ियों से नीचे उतर आया तो कोई ऐसी जगह ढूँढ़ने लगा, जहाँ मैं कुछ देर आराम से बैठ सकूँ या खड़ा हो जाऊँ! जी भर रोकर, रोने का कोटा पूरा कर लूँ, या चुप हो जाऊँ और बैठकर इस बुरे दिन के बारे में सोचूँ कि भाई, आज मुझे इतनी चपतें क्यों लग गईं! नीचे, एक तरफ रसोई घर था बड़ा-सा जहाँ कुछ न कुछ पकता ही रहता था, और कोई न कोई वहाँ बैठा हुआ कुछ खा-पी रहा होता था। तो वहाँ जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता था! तभी मेरा ध्यान उस कोठरी की ओर गया जहाँ कोयला रखा रहता था, चूल्हों की आग के लिए। तब गैस कहाँ होती थी घरों में। कोठरी अँधेरी-सी थी, और मैं उसमें एक बार झाँक भी चुका था। मैंने उसकी कुण्डी खोली और भीतर चला गया! वहाँ पहुँचकर कितना अच्छा लगा, बता नहीं सकता। लगा यही वह जगह है, जहाँ बस मेरा ही राज है। वहाँ खड़े-खड़े मैं बाहर की आवाज़ें सुनता रहा, लोगों के आने-जाने की। फिर मैं पाँच-दस मिनट बाद बाहर निकल आया। बाहर आना भी उतना ही अच्छा लगा। वहाँ खड़े-खड़े मैंने तय किया कि कभी रोना पड़ ही गया, तो इसी कोठरी में बैठकर रो लिया करूँगा।

वैसी नौबत आगे चलकर शायद दो-तीन बार ही आई, पर, वह कोठरी मुझे बहुत अपनी लगने लगी। आज भी उसकी याद कभी-कभी हो आती है – दिल्ली में, जहाँ मैं अब रहता हूँ।

जब मैं "बड़ा" हो गया, और एक बार बनारस गया। अपनी बड़ी दीदी के पास। जहाँ उनका विवाह हुआ था और वे सँकरी-सी गलियों के बीच, एक बहुत बड़ी हवेली के एक हिस्से में रहती थीं। मैंने उन्हें रोने का यह किस्सा सुनाया था। पहली बार।

वे सुनकर बहुत हँसीं। मैं भी बहुत हँसा। हम दोनों बहुत देर तक हँसते रहे। जब उन्होंने जीजा जी को यह बात बताई, तो वे भी खूब हँसे।

रोनेवाली बात पर हँसना... हाँ, यह भी होता है।

मच्छर को मलेरिया होता है या नहीं?

सुशील जोशी

यह तो जानी-मानी बात है कि मनुष्य को मलेरिया एक परजीवी की वजह से होता है। यह भी सबको पता है कि मलेरिया का यह परजीवी मनुष्य के शरीर में मच्छर के काटने से पहुँचता है। मादा मच्छर के लिए सन्तान पैदा करने के लिए ज़रूरी होता है कि उसे खून की खुराक मिले। यही खून प्राप्त करने के लिए वह मनुष्य को काटती है और खून पीती है। जिस व्यक्ति को वह मच्छर काटे यदि उसके खून में मलेरिया के परजीवी हैं, तो वे खून के साथ मच्छर के शरीर में पहुँच जाते हैं। अब यह मच्छर किसी अन्य मनुष्य को काटे तो ये परजीवी उस मनुष्य के शरीर में पहुँच सकते हैं। इस प्रकार से मलेरिया फैलता रहता है।

मलेरिया के लक्षण तो जाने-पहचाने हैं – कँपकँपी के साथ तेज़ बुखार आता है। यह बुखार एक दिन छोड़कर एक दिन आता है, हालाँकि ऐसा ज़रूरी नहीं है। एक दिन छोड़कर एक दिन बुखार आने के कारण मलेरिया को एकतरा भी कहते हैं। कँपकँपी छूटने की वजह से इसका एक नाम जूड़ीताप भी है।

मलेरिया काफी बड़ी संख्या में लोगों को परेशान करता है। एक अनुमान के मुताबिक साल भर में करीब 20 करोड़ लोग मलेरिया की चपेट में आते हैं और इनमें से साढ़े सात लाख से ज़्यादा लोग मर जाते हैं।

सवाल यह उठता है कि जो मलेरिया इंसानों में बुखार पैदा करता है और कई बार उनकी जान ले लेता है, वह मच्छरों में बुखार पैदा करता है या नहीं!

तो कई वैज्ञानिकों ने खोजबीन की। अब तक तो जितनी छानबीन हुई है, उससे पता चलता है कि मलेरिया के परजीवी (जिसका नाम प्लाज़्मोडियम है) मच्छरों को बीमार नहीं करता। मगर वैज्ञानिक लोग इतने भर से सन्तुष्ट नहीं होते। वे तो अपने जवाब में कई लेकिन-किन्तु अगर-मगर लगाते हैं। तो उन्होंने अपने सवाल को सिर्फ बुखार तक सीमित नहीं किया। वे पूछने लगे कि क्या प्लाज़्मोडियम मच्छर में कुछ भी परिवर्तन करता है। और फिर इन वैज्ञानिकों ने खोजबीन सिर्फ मच्छर-मनुष्य-मलेरिया परजीवी-मलेरिया तक रोकी नहीं। इसे उन्होंने एक बड़ा सवाल बना दिया।

सवाल कुछ इस तरह हो गया: यह तो सही है कि प्लाज़्मोडियम मनुष्य को बीमार करता है। तो मनुष्य हो गया परजीवी का एक घर। जब मनुष्य किसी परजीवी को अपने शरीर में पनाह देते हैं तो हम कहते हैं कि वे उस परजीवी के मेज़बान हैं। किन्तु यह परजीवी एक मनुष्य से सीधे दूसरे मनुष्य में नहीं पहुँच सकता। इसके लिए ज़रूरी है कि वह पहले किसी मच्छर के शरीर में पहुँचे और मच्छर से होकर किसी अन्य मनुष्य के शरीर में। तो मच्छर हो गया परजीवी का दूसरा घर। मच्छरों को हम इस परजीवी का वाहक कहते हैं। ऐसे कई परजीवी हैं जो जन्तुओं में जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे मेज़बानों और वाहकों की कई जोड़ियाँ हैं। तो सवाल यह हो गया कि जो परजीवी मेज़बान को बीमार करता है, वह क्या वाहक पर कोई असर डालता है।

और जो जवाब मिले हैं वे बहुत रोचक हैं। अलबत्ता, मैं यहाँ फिलहाल तो बात को मच्छर और मनुष्य के साथ परजीवी के रिश्ते तक ही सीमित रखूँगा।

आम तौर पर देखा गया है कि परजीवी अपने दोनों घरों पर एक-सा असर नहीं डालता। प्लाज़्मोडियम मनुष्य में

बुखार पैदा करता है मगर मच्छर को बुखार नहीं आता। इसका कारण पक्का तो पता नहीं है मगर कुछ अनुमान लगाए गए हैं।

जब परजीवी मनुष्य में प्रवेश करता है तो वह तुरन्त बुखार पैदा नहीं करता। परजीवी का एक जीवन चक्र होता है जिसमें वह अलग-अलग अवस्थाओं से गुज़रता है। इनमें से कुछ ही अवस्थाएँ बुखार पैदा करती हैं। जब यह परजीवी मच्छर के खून में प्रवेश करता है तो उस समय वह उस अवस्था में नहीं होता कि बुखार पैदा कर सके। वह अवस्था तो मनुष्य के शरीर में ही विकसित होती है।

दूसरा कारण यह बताया गया है कि परजीवी का मच्छर पर कुछ असर तो होता है मगर यह इस बात पर निर्भर है कि मच्छर के शरीर में परजीवियों की संख्या कितनी है और वे किस अवस्था में हैं। कहते हैं कि यदि संख्या बहुत बढ़ जाए, तो मच्छर की हालत भी पतली हो जाती है। मगर मच्छरों में आम तौर पर परजीवियों की संख्या ज़्यादा नहीं बढ़ने पाती।

जब कोई बाहरी तत्व हमारे शरीर में प्रवेश करता है तो हमारा शरीर उस पर हमला करता है। मच्छरों का शरीर भी करता है मगर मच्छर का तरीका थोड़ा अलग होता है। जब कोई मच्छर खून पीता है और परजीवी खून के साथ उसके शरीर में पहुँचते हैं, तो वे सीधे उसकी आन्त के मध्य भाग में पहुँच जाते हैं। मच्छर के शरीर में कुछ कोशिकाएँ होती हैं जो परजीवी का मुकाबला करती हैं – इन्हें ग्रेनुलोसाइट कहते हैं। मगर इनकी संख्या इतनी नहीं होती कि परजीवी का सफाया कर सकें।

मलेरिया परजीवी का एक असर यह होता है कि वे आन्तों की दीवार को कमज़ोर बनाते हैं। दीवार कमज़ोर होने पर ढेर सारे बैक्टीरिया (जो पहले से वहाँ पर थे) आन्तों में आ जाते हैं। इन बैक्टीरिया से लड़ना अब ज़रूरी हो जाता है। इसलिए अचानक मच्छर के शरीर में ग्रेनुलोसाइट की संख्या बढ़ने लगती है और ये परजीवी का सफाया शुरू कर देते हैं। और प्रयोगों में यह भी देखा गया है कि जो मच्छर एक बार इस परजीवी को भाँप लेता है वह अगली बार इससे निपटने के लिए तैयार होता है।

मच्छरों और प्लाज़्मोडियम की लड़ाई में बैक्टीरिया की भूमिका का एक और प्रमाण भी वैज्ञानिकों को मिला है। जब किसी मच्छर को मलेरिया परजीवी की खुराक दी जाती है और साथ में एंटीबायोटिक दवा भी दी जाती है तो मच्छर बीमार होते हैं। एंटीबायोटिक दवा बैक्टीरिया को मारती है।

इसके बाद की कहानी मज़ेदार है – बुखार से तो बच गए मगर असर तो होता ही है। यह असर बहुत अलग तरह का होता है। इस सम्बन्ध में कई वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं और अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं।

सबसे पहला निष्कर्ष तो यह है कि परजीवी से संक्रमित मच्छरों की औसत आयु कम हो जाती है।

(शेष भाग पेज 45 पर)

जब किसी मच्छर को मलेरिया परजीवी की खुराक दी जाती है...

चित्रः दिलीप चिंचालकर

टोनी का बचपन केरल में बीता। संगीत, सिनेमा, राजनीति, ट्रैकिंग, कम्प्यूटर... टोनी की दिलचस्पियाँ बहुत हैं। उनको लगता है कि जो लोग देख नहीं सकते, या बोल-सुन नहीं सकते या हाथ-पाँव से मोहताज हैं वे भी उन तमाम जगहों में आसानी से आ-जा सकें जहाँ बाकी सभी जा पाते हैं। एक समय था जब टोनी देख नहीं पाने को अपनी एक कमी मानते थे पर अब वे सोचते हैं कि यह समाज की कमी है जो सभी को एक नज़र से नहीं देख पाता है।

टोनी इन दिनों अपने माँ-पिता के साथ पुणे में रह रहे हैं। कलकत्ता से समाज विज्ञान में एम फिल करने के बाद वे पीएचडी की तैयारी कर रहे हैं।

चकमक में वो अपने बचपन के और बड़े होने के दौरान हुए कुछ अनुभव साझा करेंगे...

टोनी की डायरी

इस सब की शुरूआत मेरे हॉस्टल से हुई। वहाँ हम सब इस दुनिया को आवाज़ों से ही देखते थे। हम गिनती में आठ थे। कम से कम मुझे इतना ही याद है। हम सभी अपने घरों से दूर थे। मैं उम्र में सबसे छोटा था। यही कोई चार साल का था जब यहाँ आया था। बाकी सब भी मुझसे बहुत ज़्यादा बड़े नहीं थे। आपने माँ-पिता के साथ न रह पाने का हम सब को बड़ा अफसोस रहता। यहाँ हम एक-दूसरे का ख्याल बड़ा रखते थे। और साथ-साथ जो कुछ भी करते उसमें सुकून पाते। हमारी क्लास में दूसरे बच्चों को अपनी-अपनी पसन्द का कोई न कोई खेल मिल जाता। पर हमें अपने लिए खेल गढ़ने होते। ऐसे खेल जो हम खेल सकते थे। हॉस्टल में भी हमने मज़े के अपने तरीके ढूँढ लिए थे। खेल बनाते हुए ही पहली बार यह ख्याल आया कि हमारी दुनिया बाकियों से अलग है। हालाँकि हम उसी दुनिया के हिस्से हैं जिसने हमारे लिए कोई खेल नहीं रचा है।

सभी चित्रः श्वेता नम्बियार

उस वक्त की एक याद मुझे आज भी है। हम रंगों के बारे में सोचते। रंग क्या होते होंगे? कैसे होते होंगे? हम हर रंग को यूँ ही किसी एक चीज़ से जोड़ देते।। जैसे पीले को मिट्टी से, हरे को पत्ते से। हमें कभी पता नहीं चला कि इन रंगों को हम किसी खास चीज़ से ही क्यों जोड़ते हैं। आनेवाले समय में हमें सीखना था कि आवाज़ों की दुनिया कैसी रची जाती है।

बचपन की एक और बात मेरी याद में अब भी ताज़ा है। हमारी टीचर सौरमण्डल पढ़ा रही थीं। उन्होंने ब्लैकबोर्ड पर सूरज और उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटते ग्रह बनाए। तभी उन्हें लगा कि मैं और मेरे दोस्त इसे कैसे समझेंगे! हमारे लिए ब्लैकबोर्ड एक सपाट सतह भर है। मुश्किल घड़ी में कभी-कभी सूझ की गाड़ी तेज़ दौड़ने लगती है। उनकी भी दौड़ी। उन्होंने मुझे क्लास के बीच में खड़ा कर दिया। और मेरे दोस्तों से कहा कि वो मेरे गिर्द चक्कर लगाएँ। और कहा कि इसी तरह पृथ्वी और अन्य ग्रह सूरज के आसपास चक्कर काटते हैं। मैं इस बात को कभी नहीं भूला। हम भी इस दुनिया में शामिल होना चाहते हैं जिसमें हम जी रहे हैं। आप भी जब इस की ज़रूरत को समझेंगे तभी तो हमें पढ़ाने के खास तरीके ईजाद होंगे।

http://www.byronknoll.com/braille.html

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश

राजेन्द्र लश्करी हमसे एक साल सीनियर था, लेकिन एनसीसी में हम साथ-साथ थे। लश्करी का कद ऊँचा, बदन इकहरा और आवाज़ काफी भारी थी। लश्करी में एक बात और खास थी। उसका टेंटुआ काफी बड़ा था और बोलते समय यहाँ तक कि पानी पीते समय भी वह ऊपर-नीचे कदम ताल करता रहता था। हम उसके टेंटुए को बड़े ध्यान से देखते रहते थे और इसे कोई असामान्य चीज़ या विकृति समझते थे।

हममें से कोई लश्करी को पसन्द नहीं करता था। उसकी एक आदत बहुत खराब थी। कोई बच्चा गलती करता तो लश्करी सबसे पहले टोकता। गलती करनेवाले का खूब मज़ाक उड़ाता और उस पर खिलखिलाकर हँसता था। जबकि उसकी किसी गलती पर कोई कुछ बोल दे या हँस दे तो मारने-पीटने पर उतर आता था। अरे भाई, मान लो सार्जेंट ने बोला दाएँ मुड़ और मैं बाएँ मुड़ गया तो वो बोलेगा न मुझे। तुम्हें बीच में चिल्लाने की क्या ज़रूरत? और परेड खत्म होने के बाद भी सबको इस गलती की याद दिलाकर हँसना! नकल उतारना! क्या तुमसे कोई गलती नहीं होती कभी?

इसलिए जब एक साल लश्करी फेल हो गया तो हम लोग खूब खुश हुए कि ले बच्चू! अब रो बैठ के। लेकिन डर भी लगा कि कहीं ये अगले साल भी फेल हो गया तो हमारी कक्षा में आ जाएगा और रोज़ तंग करेगा।

लेकिन अगले साल लश्करी न क्लास में दिखाई दिया न एनसीसी में। हमने सोचा – चलो, पीछा छूटा! फिर लगा यार! माना कि लश्करी ज़रा मुँहफट था, दूसरों की भावना का ख्याल नहीं रख पाता था लेकिन ऐसा भी तो कोई होना चाहिए जो आपकी गलती पर फौरन आपको टोक दे और आप दोबारा वही गलती करने से या बार-बार वही गलती दोहराने से बच जाओ। चाहता तो वह भी चुप रह जाता, फिर? सबका बुरा ज़रूर बना पर उसने ठीक तो कर दिया न तुम्हें!

लगा अच्छा-बुरा, जैसा भी था, था। गया। अब ज़िन्दगी में उससे दोबारा कभी मुलाकात नहीं होगी।

लेकिन उससे दोबारा मुलाकात हुई। और वह भी बड़े नाटकीय अन्दाज़ में।

इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करने के बाद मुझे भारतीय नौसेना से नौकरी का एक प्रस्ताव मिला। और उसका इंटरव्यू देने के लिए मैं बम्बई गया। वहीं एक दिन खाने की लाइन में थाली-मग्गा हाथ में लिए मुझे लश्करी नज़र आया। उसकी कद-काठी से मैंने उसे पहचान लिया। मैंने उसे आवाज़ दी। उसने मेरी तरफ देखा। उसका नम्बर आने ही वाला था। कुछ देर वह पशोपेश में रहा कि लाइन छोड़कर मेरे पास आए या नहीं, फिर आ गया।

लश्करी ने मुझसे हाथ मिलाया। उसका हाथ बहुत बड़ा और सख्त लेकिन ठण्डा था। और

चित्र : प्रशान्त सोनी

यही सख्ती और ठण्डक उसके चेहरे पर और आवाज़ में भी थी। मैंने पूछा, "तुम यहाँ कैसे?"

बोला, "मैं यहीं काम करता हूँ।"

मैंने पूछा, "नेवी में कैसे आ गए?"

बोला, "पापा कल्याण मिल में रातपाली में काम करते थे। एक दिन मशीन में हाथ आ गया। हाथ काटना पड़ा। नौकरी छूट गई। फिर क्या करते? मैंने कुछ दिन इधर-उधर कुछ छोटा-मोटा काम किया फिर ये मिल गई तो तीन साल से यहीं हूँ। तू?"

मैंने कहा, "इंटरव्यू देने आया हूँ।"

उसने कहा, "मिलना!" और पलटकर चला गया।

उसके व्यवहार का ठण्डापन मुझे अजीब लगा।

क्या लश्करी को बुरा लग रहा है कि वह सेलर है यानी कर्मचारियों में भी सबसे निचली रैंक पर और मैं ऑफिसर का इंटरव्यू देने आ गया? सिर्फ इसलिए कि मेरे पिता ने मुझे इंजीनियरिंग की पढ़ाई करवा दी और उसके पिताजी उसे नहीं पढ़ा पाए? दूसरे दिन लश्करी से फिर मुलाकात हो गई।

हम लोग ऑफिसर्स मेस में छुरी-काँटे से खाना खाते थे। वहाँ पंखे लगे थे। खिड़कियों पर परदे पड़े थे। रेडियो पर गाने बज रहे थे। टीवी था। शानदार क्रॉकरी थी और खाना खिलाने-परोसने के लिए सेलर्स की ड्यूटी लगती थी।

एक दिन मैं आराम से सीटी बजाता हुआ मेस में घुसा। उस दिन हमें खाना परोसने की ड्यूटी लश्करी की थी। मैं डाइनिंग टेबल पर बैठा खाना खा रहा था। मन ही मन मुझे बहुत बुरा लग रहा था। दरअसल मुझे शर्म आ रही थी। लग रहा था जैसे मेरी ही वजह से आज लश्करी को नीचा देखना पड़ रहा है। मेरा मन कर रहा था कि या तो मैं लश्करी को खाना खाने के लिए अपने पास बिठा लूँ या खुद उठकर उसके हाथ से प्लेट लेकर सबको खाना परोसने लगूँ। ज़मीन में गड़ जाऊँ ऐसा मन कर रहा था। क्या सोच रहा होगा लश्करी! कि मैं जिसकी गलतियाँ निकाला करता था और जो मुझसे छोटा है वह कुर्सी पर बैठा है और मैं उसकी बैरागिरी कर रहा हूँ।

किसी तरह डिनर खत्म हुआ और हम लोग उठकर बाहर जाने लगे। अचानक किसी ने पीछे से मेरे कन्धे पर हाथ रखा। देखा तो लश्करी!

दबे सुर में लश्करी बोला, "ऑफिसर्स मेस में सीटी नहीं बजाना। बेड मैनर्स।"

"क्या मैं सीटी बजा रहा था? किसी ने कुछ कहा तो नहीं!"

मैं अचकचा कर रह गया। रामसहाय, तुम सोच नहीं सकते उस समय मुझे कैसा लग रहा था। अपने से छोटों को अपने से बड़ा हो जाते देखकर भी लश्करी ने अपना आपा नहीं खोया और मुश्किल हालात में भी अपना बड़प्पन नहीं छोड़ा।

मुझे लगा मेरा बचपन में खोया राजेन्द्र लश्करी मुझे वापस मिल गया है।

अन्याय के विरुद्ध

चेखव

चित्र : हबीब अली

कुछ दिन पहले की बात है। मैंने अपने बच्चों की मास्टरनी जूलिया को बुलाया और कहा, "बैठो जूलिया। मैं तुम्हारी तनख्वाह का हिसाब करना चाहता हूँ। मेरे ख्याल से तुम्हें पैसे की ज़रूरत होगी और जितना मैं तुम्हें अब तक जान सका हूँ मुझे लगता है तुम कभी अपने पैसे नहीं माँगेगी। इसलिए मैं खुद ही तुम्हें पैसे देना चाहता हूँ। हाँ, तो तुम्हारी तनख्वाह तीस रूबल महीना तय हुई थी न?"

"जी नहीं, चालीस रूबल।" जूलिया ने दबी आवाज़ में कहा।

"नहीं भाई तीस। मैंने डायरी में नोट कर रखा है। मैं बच्चों की मास्टरनी को हमेशा तीस रूबल महीना ही देता आया हूँ। अच्छा तो तुम्हें यहाँ काम करते हुए दो महीने हुए हैं...." "जी नहीं, दो महीने पाँच दिन।"

"क्या कह रही हो! ठीक दो महीने हुए हैं। भाई, मैंने डायरी में सब लिख रखा है। तो दो महीने के बनते हैं साठ रूबल। लेकिन साठ रूबल तभी बनेंगे जब महीने में एक भी नागा न हुआ हो। तुमने रविवार की छुट्टी मनाई है। उस दिन तुमने काम नहीं किया है। कोल्या को सिर्फ घुमाने भर ले गई हो। इसके अलावा तुमने तीन छुट्टियाँ और ली हैं..."

जूलिया का चेहरा पीला पड़ गया। वह बार-बार अपनी ड्रेस की सिलवटें दूर करने लगी। बोली एक शब्द नहीं।

"हाँ, तो नौ इतवार तीन छुट्टियाँ.... यानी बारह दिन काम नहीं हुआ। मतलब यह कि तुम्हारे बारह रूबल कट गए। उधर कोल्या चार दिन बीमार रहा और तुमने सिर्फ वान्या को ही पढ़ाया। पिछले हफ्ते शायद तीन दिन हमारे दाँतों में दर्द हो रहा था। और मेरी बीबी ने तुम्हें दोपहर के बाद छुट्टी दे दी थी। तो बारह सात हुए उन्नीस। उन्नीस नागे। हाँ, तो भाई घटाओ साठ में से उन्नीस।.....कितने बचे?.... इकतालीस रूबल। ठीक है न।"

जूलिया की आँखों में आँसू छलक आए। उसने धीरे-से खाँसा। इसके बाद अपनी नाक साफ की। बोली एक शब्द भी नहीं।

"हाँ, याद आया।" मैंने डायरी देखते हुए कहा, "पहली जनवरी को तुमने चाय की प्लेट और प्याली तोड़ी थी। प्याली बहुत कीमती थी। मगर मेरे भाग्य में तो हमेशा नुकसान उठाना ही बदा है। चलो, मैं उसके दो ही रूबल काटूँगा। अब देखो, उस दिन तुमने ध्यान नहीं रखा और तुम्हारी नज़र बचाकर कोल्या पेड़ पर चढ़ गया और वहाँ खरोंच लगकर उसकी जैकेट फट गई। दस रूबल उसके कट गए। इसी तरह तुम्हारी लापरवाही के कारण नौकरानी ने वान्या के जूते चुरा लिए ... अब देखा भाई तुम्हारा काम बच्चों की देखभाल है। तुम्हें इसी के तो पैसे मिलते हैं। तुम अपने काम में ढील दोगी, तो पैसे कटेंगे या नहीं? मैं ठीक कह रहा हूँ न?.... तो जूतों के लिए पाँच रूबल और कट गए।... और हाँ, दस जनवरी को मैंने तुम्हें दस रूबल दिए थे।"

"जी नहीं, आपने मुझे कुछ नहीं.... " जूलिया ने दबी ज़बान से कहना चाहा।

"अरे मैं क्या झूठ बोल रहा हूँ? मैं डायरी में हर चीज़ नोट कर लेता हूँ। तुम्हें यकीन न हो तो दिखाऊँ डायरी?"

"दिए होंगे नहीं... दिए हैं।" मैंने कठोर स्वर में कहा। "तो ठीक है घटाओ सत्ताईस, इकतालीस में से... बचे चौदह। .... क्यों हिसाब ठीक है न?"

उसकी आँखें आँसुओं से भर उठीं। उसके शरीर पर पसीना छलछला आया। काँपती आवाज़ में वह बोली, "मुझे अभी तक एक ही बार कुछ पैसे मिले थे और वे भी आपकी पत्नी ने दिए थे। सिर्फ तीन रूबल। ज़्यादा नहीं।"

"अच्छा।" मैंने स्वर में आश्चर्य भरकर कहा, "और इतनी बड़ी बात तुम्हारी मालकिन

(शेष भाग पेज 21 पर)

पीएनजी के कुछ नखरे

रमाकान्त अग्निहोत्री

बात से बात निकलती है। पिछले अंक में पीएनजी – पुरुष वचन लिंग (person Number Gender) पर बात शुरू की थी। सोचा कुछ आगे बात की जाए। पीएनजी का अर्थ केवल इतना ही है कि कर्ता की झलक क्रिया में रहती है; कुछ भाषाओं में पूरी तरह से, कुछ में थोड़ी बहुत और कुछ में बिलकुल भी नहीं। जहाँ बिलकुल भी नहीं होती वहाँ आप कर्ता को गायब नहीं कर सकते जैसा कि हिन्दी में कई बार सम्भव होता है। चकमक के पिछले अंक में हमने देखा कि आप कह सकते हैं "जा रही हूँ।" इस वाक्य का अर्थ केवल यही हो सकता है कि "मैं जा रही हूँ।" यानी प्रथम पुरुष, एकवचन, स्त्रीलिंग। पीएनजी की पूरी छवि क्रिया में थी इसलिए "मैं" की छूट लेना सम्भव हुआ। अँग्रेज़ी में ऐसा सम्भव नहीं। आप नहीं कह सकते "going।" इसका कोई भी अर्थ सम्भव नहीं जब तक कि यह शब्द किसी खास सन्दर्भ में न कहा गया हो।

सच बात तो यह है कि हिन्दी में भी यह बात हमेशा सम्भव नहीं। काफी हद तक वर्तमान और भविष्य काल में यह सम्भव हो सकता है; अपूर्ण भूतकाल में भी। लेकिन पूर्ण भूतकाल में शायद नहीं। हाथ कंगन को आरसी क्या; आप सब हिन्दी जानते हैं। देख लेते हैं। पहले वर्तमान में:

1. मोहन सेब खाता है।
2. होमना सेब खाती है।
3. वे सेब खाते हैं।
4. तुम सेब खाते हो।
5. तुम सेब खाती हो।
6. आप सेब खाते हैं।
7. आप सेब खाती हैं।
8. मैं सेब खाता हूँ।
9. मैं सेब खाती हूँ।
10. हम सेब खाते हैं।

वाक्य 1 से 10 तक आप कहीं भी कर्ता को छोड़ सकते हैं। वाक्य के अर्थ में कोई विसंगति पैदा नहीं होगी। भविष्य काल में भी कुछ ऐसा ही होगा। लेकिन पूर्ण भूतकाल

चित्र : नीलेश गहलोत

(यानी ऐसी परिस्थिति जहाँ काम पूरा हो चुका हो) की बात कुछ और है। वाक्य 1 से 10 तक के आधार पर तो हिन्दी का सीधा-सीधा नियम बनता है: "कर्ता की पीएनजी के अनुसार क्रिया बदलो।" यह तो आप देख ही रहे हैं कि अपने आप में ही काफी जटिल है। चार वर्ष के बच्चे केवल यही नहीं और भी जटिल बातें पकड़ लेते हैं कर्ता और क्रिया के सम्बन्ध में। कुछ वाक्य देखिए:

11. मोहन ने सेब खाया।
12. होमना ने सेब खाया।
13. लड़कों ने सेब खाया।
14. लड़कियों ने सेब खाया।
15. तुम ने सेब खाया।
16. हमने सेब खाया।

बात असल में यह है कि यहाँ कोई भी सेब खाए, क्रिया केवल "खाया।" भला क्यों? हिन्दी भाषा के मुख्य नियम का क्या हुआ जो हमने अभी ऊपर बनाया कि कर्ता के पीएनजी की छवि सदा क्रिया में दिखाई देगी। और भई यह बताओ कि चार वर्ष की बच्ची या बच्चा इस महान नियम से अलग कौन से ऐसे नियम पकड़ लेता है जिससे

अपनी भाषा में वह कभी गलती नहीं करता। यह भी याद रहे कि कर्ता की छवि क्रिया में साधारण भूतकाल में भी रहती हैः "मोहन खाना खाता था।/ होमना खाना खाती थी।/ हम खाना खाते थे।" आदि। फिर 11 से 16 नम्बर वाक्यों में क्या चल रहा है। कोई चार साल की बच्ची कभी भूल से भी यह नहीं कहतीः "होमना सेब खाई।" कुछ और वाक्य देखते हैं जो 11 से 16 जैसे ही हैं। केवल "सेब" की जगह "गाजर" है।

17. मोहन ने गाजर खाई।

18. होमना ने गाजर खाई।

19. लड़कों ने गाजर खाई।

20. लड़कियों ने गाजर खाई।

21. तुम ने गाजर खाई।

22. हमने गाजर खाई।

ग़ज़ब हो गया। "सेब" को "गाजर" में क्या बदला, क्रिया की दुनिया ही बदल गई! 11 से 22 तक कौन-सी बात ऐसी है जो वाक्य 1 से 10 तक में नहीं है? यदि आप थोड़ा ध्यान से देखें तो पता लगेगा कि पहले दस वाक्यों में कर्ता के बाद "ने" नहीं है, 11 से 22 तक के हर वाक्य में कर्ता के आगे एक छोटा-सा स्पीड ब्रेकर लगा है "ने" का। दूसरी बात यह है कि 11 से 22 नम्बर वाक्यों में काम पूरा हो चुका है यानी "सेब" खत्म और "गाजर" भी। अब तो आप समझ ही गए होंगे कि ऐसे वाक्यों में क्रिया का मिलन कर्ता से न होकर कर्म से होता है। कर्म का वचन और लिंग क्रिया में झलकते हैं। "सेब" और "गाजर" दोनों एकवचन पर "सेब" पुलिंग (इसलिए "खाया") "गाजर" स्त्रीलिंग (इसलिए "खाई")। "मोहन ने सेब खाए" आदि।

अन्याय के विरुद्ध

(पेज 19 का शेष भाग)

ने मुझे बताई तक नहीं। देखो, हो जाता न अनर्थ। खैर, मैं इसे भी डायरी में नोट कर लेता हूँ। हाँ, तो, चौदह में वे तीन और घटा दो। बचते है ग्यारह रूबल। देख लो भाई ये रही तुम्हारी तनख्वाह.... ये ग्यारह रूबल। देख लो ठीक है न?"

उसने काँपते हाथों से ग्यारह रूबल लिए और अपनी जेब टटोलकर किसी तरह उन्हें उसमें ठँस लिए और धीमे स्वर में बोली, "जी धन्यवाद।"

मैं गुस्से से उबलने लगा। कमरे में चक्कर लगाते हुए मैंने गुस्से में कहा, "धन्यवाद किस बात का?"

"आपने मुझे पैसे दिए, इसके लिए धन्यवाद।"

अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने लगभग चिल्लाते हुए बोला, "तुम मुझे धन्यवाद दे रही हो जबकि तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैंने तुम्हें ठग लिया है। तुम्हें धोखा दिया है। तुम्हारे पैसे हड़प लिए हैं। ... इसके बावजूद तुम मुझे धन्यवाद दे रही हो।"

"जी हाँ। इससे पहले मैंने जहाँ-जहाँ काम किया, उन लोगों ने जो मुझे एक पैसा तक नहीं दिया। आप कुछ तो दे रहे हैं।" उसने मेरे गुस्से पर ठण्डे पानी के छींटे-से मारते हुए कहा।

"उन लोगों ने तुम्हें एक पैसा भी नहीं दिया! जूलिया मुझे यह बात सुनकर ज़रा भी अचरज नहीं हो रहा है।" मैंने कहा। फिर स्वर धीमा कर मैं बोला, "जूलिया, मुझे इस बात के लिए माफ कर देना कि मैंने तुम्हारे साथ एक छोटा-सा क्रूर मज़ाक किया। पर मैं तुम्हें सबक सिखाना चाहता था। देखो जूलिया मैं तुम्हारा एक पैसा भी नहीं मारूँगा। यह तुम्हारे अस्सी रूबल रखे हैं। मैं अभी इन्हें तुम्हें दूँगा। लेकिन उससे पहले मैं तुमसे कुछ पूछना चाहूँगा। जूलिया, क्या ज़रूरी है कि इन्सान भला कहलाए जाने के लिए इतना दब्बू, भीरू और बोदा बन जाए कि उसके साथ जो अन्याय हो रहा है, उसका विरोध तक न करे? बस खामोश रहे और सारी ज़्यादतियाँ सहता जाए? नहीं, जूलिया, नहीं। इस तरह खामोश रहने से काम नहीं चलेगा। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए तुम्हें इस कठोर, निर्मम और हृदयहीन संसार से लड़ना होगा। अपने दाँतों और पँजों के साथ लड़ना होगा, पूरी ताकत के साथ। मत भूलो जूलिया कि इस संसार में दब्बू, भीरू और बोदे लोगों के लिए कोई जगह नहीं है।"

अनुवादः प्रभाकर द्विवेदी

पुड़ियों की गली

किस्त - 4

कृष्ण कुमार

बीस तारीख की सुबह सूरज उगने के समय का नज़ारा किसी जादुई दृश्य से कम न था। देर रात तक सरजू ने पूरी बस अन्दर और बाहर से धोई थी। बाहर का पेंट भले ही पुराना पड़ चुका था, पर धुल जाने के बाद चमक उठा था। बड़ी बहनजी ने एक दिन पहले प्रार्थना के समय यह घोषणा कर दी थी कि स्कूल की तीस लड़कियों का दल बीस तारीख की सुबह साढ़े छह बजे निवाड़ी के लिए रवाना होगा। साथ में रहेंगी कुसुम मैडम, प्रमोद सर और सूरज। बीस की सुबह जब बड़ी बहनजी साढ़े पाँच बजे स्कूल पहुँचीं तो फाटक पर उन्होंने एक अदभुत नज़ारा देखा। शरद की साफ़-सुथरी सुबह की रोशनी में स्कूल का विशाल फाटक पूरा खुला हुआ है और बस उसके बीचोंबीच खड़ी है। भगवानदास ने कल देर शाम आकर इंजिन चालू करके देखा था और बस चलाकर फाटक के सामने इस तरह खड़ी कर दी थी मानों रवाना होने के लिए एकदम तैयार हो।

लड़कियाँ थोड़ी देर में आना शुरू हुईं। कुसुम मैडम ने सख्त हिदायत दी थी कि पाँच दिन के कपड़ों और दरी, कम्बल, तकियों के सिवा कुछ और नहीं लाना है। इस हिदायत के बावजूद कुछ लड़कियाँ बकायदा पूरा बक्सा लेकर आई थीं। इनमें पुष्पा और राधा भी थीं जिन्हें खो-खो की टीम में शामिल किया गया था। तैराकी के लिए चुनी गई दो लड़कियाँ, शोभा और गीता, पढ़ाकू भी थीं और हमेशा अपना बस्ता साथ रखती थीं। लेकिन बस्ते में स्कूल की किताबों की जगह उपन्यास भरे होते थे। एक दिन विज्ञान की बहनजी ने शोभा को क्लास में उपन्यास पढ़ते पकड़ लिया था। बहनजी खूब बरसी थीं, पर बरसने के दौरान उन्होंने पूछ लिया था कि शोभा को यह किताब किसने दी है। जवाब में शोभा के रुआँसे मुँह से जैसे ही निकला था "बड़ी बहनजी ने", तो डाँट एकदम रुक गई थी और डाँटनेवाली बहनजी खिसियाकर जड़त्व का नियम बताने लगी थीं।

चलने का समय साढ़े छह का था पर सामान छत पर चढ़ाने में ही सात बज गए थे। टेबल टेनिस की चारों लड़कियाँ सात बजे के बाद आईं। पूरे स्कूल में इन चार की पहचान अलग थी क्योंकि सबको पता था कि स्कूल में भले ही वे सलवार कुर्ता पहनती हों, घर पर हमेशा स्कर्ट-ब्लाउज़ पहनती हैं। आज स्कूल की यूनिफ़ॉर्म में आना ज़रूरी नहीं था। इसलिए आज भी ये चारों स्कर्ट-ब्लाउज़ पहने थीं। उनके देर से आने पर सरजू थोड़ा बड़बड़ाया, पर जैसे ही सरजू ने उनका सामान छत पर रखा, भगवानदास ने भोंपू दबा दिया। अगले ही क्षण इंजिन घरघराया और धुएँ के पाइप के पास खड़ा काला कुत्ता पाइप से नीला धुआँ निकलता देखकर चौंका और कूदकर हट गया। बस एकदम चल पड़ी। सड़क पर सुबह की सैर कर रहे लोग आँखें मलकर देखने लगे कि क्या यह वही बस है जो हमेशा स्कूल के पास खड़ी रहती थी।

बस चले हुए पन्द्रह मिनट हो गए। अचानक पुष्पा के मन में यह प्रश्न उठा कि बड़ी बहनजी क्यों नहीं दिख रही हैं। उसने बगल में बैठी राधा से पूछा तो वह भी थोड़ा हैरत में पड़ गई। दोनों ने पीछे की सीटों पर नज़र डाली, पर बड़ी बहनजी कहीं नहीं थीं। अभी-अभी बस के रवाना होने तक वह पास में खड़ी थीं, यकायक गायब कैसे हो गईं? उन्हें जाना नहीं था तो सुबह-सुबह आई ही क्यों? इन जिज्ञासाओं से घिरकर पुष्पा अपनी सीट से उठी और ड्राइवर की सीट के ठीक पीछे खिड़की के पास बैठे प्रमोद सर के पास जाकर बोली, "सर, बड़ी बहनजी हमारे साथ क्यों नहीं आईं?"

प्रमोद सर खिड़की से बाहर देख रहे थे। सिर घुमाकर पुष्पा की तरफ देखते हुए बोले, "वे पूड़ियाँ बनवा रही हैं।"

पुष्पा खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने समझा कि प्रमोद सर मज़ाक कर रहे हैं हालाँकि वे बहुत ही कम मज़ाक करते थे। उनके माथे की सिलवटें भी इस बात की गवाह थीं कि वे अपनी ही उधेड़बुन में डूबे रहनेवाले इंसान थे।

उनके ठीक पीछे कुसुम मैडम बैठी थीं। पुष्पा की हँसी ने उनका ध्यान खींचा। वे बोलीं, "किस बात पर हँसी आ रही है, पुष्पा?"

"सर कह रहे हैं कि बड़ी बहनजी पूड़ियाँ बनवाने के लिए रुक गई हैं।" पुष्पा हँसते-हँसते बोली।

"यह कोई मज़ाक नहीं है, सच है।"

"तो फिर बड़ी बहनजी पहुँचेंगी कैसे?" पुष्पा ने पूछा।

पूड़ियों की गठरी लेकर वे दस बजे की बस से चलेंगी और हमें पन्ना में मिलेंगी। वहाँ से हमारे साथ चलेंगी। किसी अच्छी जगह रुककर हम सब पूड़ी खाएँगे।

योजना सुनकर पुष्पा अवाक् रह गई। अपनी सीट पर लौटकर उसने राधा का कन्धा हिलाया। पूड़ियाँ बनवाने की खातिर बड़ी बहनजी का पीछे रह जाना अब उसके दिमाग में एक नई, चिन्ताजनक आकृति लेता जा रहा था।

"तुम्हें पता है बड़ी बहनजी पूड़ियाँ बनवाने रुक गई हैं?" पुष्पा बोली।

चित्र : जगदीश जोशी

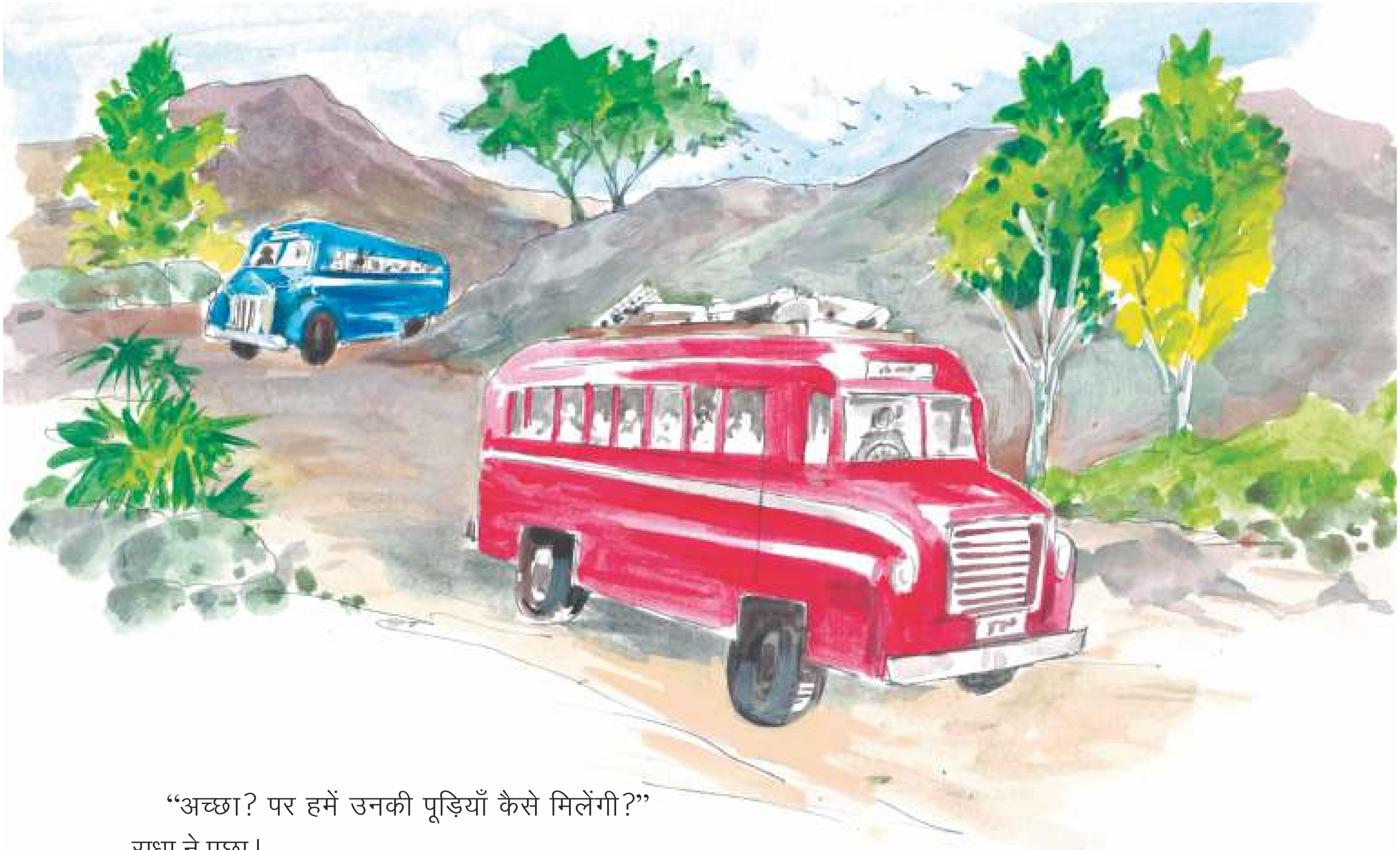

"अच्छा? पर हमें उनकी पूड़ियाँ कैसे मिलेंगी?" राधा ने पूछा।

"यही तो! कुसुम मैडम पता है क्या कह रही हैं? ...... बड़ी बहनजी पूड़ियाँ लेकर दस बजे वाली बस से चलेंगी ..... हमें पन्ना में मिलेंगी।"

"तब तक हम लोग भूखे रहेंगे?" राधा ने पूछा।

"तुझे खाने की पड़ी है। मुझे लग रहा है कि मेरी जीत पक्की है।" पुष्पा बोली।

"बड़ी बहनजी तुझे कैसे जिताएँगी?"

"मैं अपनी शर्त की बात कर रही हूँ। बड़ी बहनजी अपने साथ नहीं आई हैं। इसका मतलब है मेरी बात सच निकलेगी। यह बस टकरा जाएगी।"

"पागल! तू सोचती है बड़ी बहनजी जानबूझकर पीछे रुक गई हैं?"

"मैंने ये तो नहीं कहा।" पुष्पा कुछ ज़ोर-से बोली।

"तो फिर? पूड़ियों का दुर्घटना से क्या लेना-देना?"

"कुछ भी नहीं! कुछ नहीं! पर जो होना होता है, वही होता है। कोई न कोई कारण बन जाता है।"

यह कहते-कहते पुष्पा का चेहरा गम्भीर हो उठा था और उसकी आँखों में वही अजीब-सी चमक आ गई थी जिसे देखकर राधा हमेशा थोड़ा डर जाती थी।

"तेरा दिमाग खराब हो गया है। मैं कुसुम मैडम से शिकायत करूँ?" राधा सीट से उठते हुए बोली।

पुष्पा की गम्भीरता गायब हो गई। वह शिकायत के डर से एकदम इस दुनिया में लौट आई। बोली, "तू चुपचाप बैठ। तुझे अपनी फूलोंवाली एलबम की चिन्ता सता रही है न? दुर्घटना होगी तो तू बचेगी कहाँ?" पुष्पा ने धमकी देने के अन्दाज़ में कहा।

"और तू बच जाएगी?" राधा ने जवाब में कहा।

दोनों हँसने लगीं। बस के दोनों तरफ हरे-हरे खेत नज़र आ रहे थे। हलकी-सी ठण्डक लिए हवा खिड़कियों से झटके के साथ अन्दर आ रही थी। तभी कुसुम मैडम ने खड़े होकर पीछे देखकर आवाज़ दी, "कुछ गाओ न तुम लोग, शुरू करो।"

शुरुआत राधा और पुष्पा को ही करनी पड़ी। एकदम से कोई गाना सूझ नहीं रहा था। पर थोड़ी देर की हूँ...हाँ के बाद दोनों ने प्रमोद सर का सिखाया हुआ एक गीत शुरू किया, "हम कैडिट हिन्दुस्तान के।" बस में थोड़ी जान आई। इस गीत के बाद बैठी लड़कियों ने शुरू किया, "हवा में उड़ता जाए...।" इसके बाद तो गानों की बाढ़-सी आ गई। बस कब सतना से गुज़री, कब उसे एक कुएँ के पास रोककर भगवानदास और सूरज ने दो बालटी पानी उड़ेलकर इंजिन को ठण्डा किया, किसी को पता ही न चला।

सतना और पन्ना के बीच कोई पचास किलोमीटर का फासला है। आम बसें यह दूरी लगभग सवा-डेढ घण्टे में तय कर लेती थी। भगवानदास बहुत धीरे-धीरे बस चला रहा था, क्योंकि उसे इंजिन के गर्म हो जाने की चिन्ता लगातार सता रही थी। कोई इंजिन वर्षों बाद मरम्मत करके ज़ोर-से चलाया जाए तो जल्दी-से गर्म हो जाता है। पीछे से कई बसें आईं और सर्राटे से भागती हुई आगे निकल गईं। हर बार पुष्पा राधा को घूरकर देखती, जैसे दुर्घटना का क्षण आ पहुँचा हो।

आज सुबह जब बड़ी बहनजी बस को विदा करने आई थीं, उस समय तक उनके घर की रसोई में पूड़ियाँ बनना शुरू हो चुकी थीं। बड़ी बहनजी का घर था तो बाज़ार के दूसरे सिरे पर, लेकिन कई तरह से वह स्कूल का ही एक हिस्सा था क्योंकि स्कूल के कई काम उनके घर पर होते थे। खेल यात्रा के पहले दिन का खाना घर बनवाने का निर्णय उन्होंने दो दिन पहले ले लिया था। आज सुबह से तिजिया एक बड़ी कढ़ाही में पूड़ियाँ सेंकने में जुटी थी। आटा उसने रात को ही गूँथ लिया था। बड़ी बहनजी ने एक बड़े पतीले भर आलू उबालकर छील लिए थे। उन्हें बघारने भर की देर थी। पहली पूड़ी तिजिया ने जब खौलते हुए तेल में डाली, उस समय सुबह के साढ़े पाँच बजे थे। साढ़े सात बजे तक बड़ी बहनजी स्कूल से लौट आईं। उनके आ जाने से पूड़ियों के बनने में तेज़ी आ गई।

(शेष भाग पेज 30 पर)

चित्रः जगदीश जोशी

चित्र : अतनु राय

रमजान का पहला दिन

ज़ेबा खातून

शाम के सात बजे ही थे कि पूरी गली में हलचल-सी मच गई। कल से रमज़ान शुरू होनेवाला है। आज चाँद दिखेगा। सभी लोग अपनी-अपनी छत पर आ गए।

मैं भी अपने भाई-बहनों के साथ छत पर चली गई और चाँद के इन्तज़ार में इधर से उधर घूमने लगी तभी मेरी नज़र पार्क की तरफ गई, वहाँ लड़कों का झुण्ड खड़ा था और बार-बार आसमान की तरफ देख रहा था।

छोटे बच्चे छत पर ही धमा-चौकड़ी मचाए हुए थे। उन्हें चाँद से कुछ लेना-देना नहीं था। वे लोगों की भीड़ में बस शामिल थे। महिलाएँ आसपास की छतों पर खड़ी एक दूसरे से बात कर रही थीं, "कल से सुबह से शाम तक आराम ही आराम है।" "अब ईद भी आ ही जाएगी।" "मैं तो उसी दुकान से कपड़े लाऊँगी जहाँ से हमेशा लाती हूँ। उसके पास नए-नए फैशन के कपड़े होते हैं।"

लड़कियाँ भी एक कोने में खड़ी अपनी बातों में मशगूल थीं। "इस बार की ईद पर तो मैं बाजीराव मस्तानी वाली ड्रेस ही लाऊँगी। उसमें दीपिका पादुकोण कितनी अच्छी लग रही थी।" "अरे, मैं तो बाज़ार में लहँगा पसन्द कर आई हूँ। वही लाऊँगी, हील वाली सैंडल तो मैं ले ही आई हूँ।"

सभी की निगाहें आसमान पर टिकी बड़ी ही बेसब्री से चाँद के दीदार का इन्तज़ार कर रही थीं कि मस्जिद से लाउडस्पीकर की आवाज़ सुन सभी शान्त हो गए। ऐलान होने लगा, “चाँद निकल चुका है। कल पहला रोज़ा है।” तभी बड़ी ज़ोर-से सायरन बजा। सब की नज़रें आसमान पर चली गईं और सब अपने-अपने माथे पर हाथ रखकर आँखों पर ज़ोर देते हुए चाँद देखने की कोशिश करने लगे। लेकिन किसी को भी चाँद नहीं दिखाई दिया। तभी मुझे चाँद दिखाई दे गया। बिलकुल बारीक। एक धागे की तरह। मैं ज़ोर-से बोली, “अम्मी देखो-देखो, वह रहा चाँद।” छत पर खड़े सभी लोग मेरे पास आकर खड़े होते हुए बोले, “कहाँ है चाँद?” सभी मेरी उँगली के इशारे की तरफ देखने लगे और एक दूसरे को रमज़ान की मुबारकबाद देते हुए गले लगने लगे। पार्क और छत अब सन्नाटे से भर गए थे और गली में रौनक आ गई थी।

नीचे आकर अम्मी बोलीं, “चल ज़ेबा, सहरी में खाने के लिए कुछ ले आते हैं।” मैंने थैला उठाया और अम्मी के साथ बाज़ार चली गई। बाज़ार में आज रोज़ के मुकाबले बहुत भीड़ थी। बन, फैन और सेवैयों की ठेलियों से बाज़ार भरा पड़ा था। अम्मी ने सेवैयाँ और फैनी खरीद ली। मैं अम्मी से खजला खरीदने की ज़िद्द करने लगी। पहले तो अम्मी ने मना कर दिया लेकिन मेरी बार-बार की ज़िद्द पर उन्होंने खरीद लिया। हम सहरी की खरीददारी करके घर वापस आ गए।

सोने का वक्त हो गया था। सभी रमज़ान और ईद की ही बातें कर रहे थे। अम्मी बोली, “अब सो जाओ। सुबह जल्दी उठना है।” तब मेरे बड़े भाई इमरान और बड़ी बहन आसना ने कहा, “अम्मी हमें सहरी में ज़रूर जगा देना।” मैंने अम्मी से कहा, “मैं भी रोज़ा रखूँगी।” इस पर अम्मी बोली, “अरे, तू मत रख। तेरे से रोज़ा नहीं रखा जाएगा।” पर मैं अपनी ही बात कहे जा रही थी, तो अम्मी बोली, “अच्छा ठीक है, अब सो जा।”

सुबह खटर-पटर की आवाज़ से मेरी आँख खुल गई। मैंने अपनी बगल में देखा तो अम्मी गायब थी। मैं सोचने लगी अम्मी ज़रूर सहरी के लिए खाना बना रही होंगी। मैंने मन ही मन सोचा की अभी और सो लेती हूँ, सहरी में अम्मी जगा देगी, और मैं फिर से सो गई।

“ज़ेबा उठ, ज़ेबा उठ, ज़ेबा ओ ज़ेबा।” की आवाज़ से मैं हड़बड़ाकर बिस्तर पर उठ बैठी। देखा तो पापा मुझे जगा रहे थे। वे ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे, “चल नीचे सहरी का समय हो गया। सब तेरा इन्तज़ार कर रहे हैं।” मैं उनींदी आँखों से नीचे गई तो देखा मेरे भाई-बहन सभी उठ गए थे। मैंने घड़ी में टाइम देखा तीन बज रहे थे। मैं अम्मी से बोली आप कब उठीं? वह आटे से सने हाथ को धोते हुए बोलीं, “ढाई बजे, जब मस्जिद से सहरी के इन्तज़ाम करने का ऐलान हुआ।”

पापा ने दस्तरखान बिछाते हुए कहा, “सब हाथ धोकर आ जाओ।” अम्मी ने सबके लिए खाने में दही, सब्ज़ी के साथ रोटी परोसी और साथ में दूधवाली फैनी और मेरा मनपसन्द खजला भी एक प्लेट में रख दिया और सबके साथ खाने बैठ गईं। खाने से पहले सभी ने बिस्मिल्लाह किया।

आसपास के घरों से भी बर्तनों के खड़कने की आवाज़ें आ रही थीं। तभी मस्जिद से ऐलान हुआ, “मोहतरम हज़रात, सहरी के खत्म होने में अब बस दस मिनट ही बाकी है। जल्द से जल्द सहरी से फारिग हो जाएँ।” इतना सुनते ही हमने जल्दी-जल्दी सहरी निपटाई और पानी पिया। तीन बजकर पचास मिनट हो चुके थे। फिर से ऐलान हुआ “मोहतरम हज़रात, सहरी का टाइम खत्म हो चुका है। खाना-पीना बन्द कर दीजिए और रोज़े की नियत कर लें।” हम सबने अपने मन-मन में रोज़े की नियत की। “वा बीसोमी गड़िन्वयतु मिन सहरी रमज़ान” बोले ही थे कि अज़ान हो गई। पापा ने दोनों भाइयों से कहा, “चलो नमाज़ पढ़ने मस्जिद चलते हैं।” इमरान बोला, “पापा यहीं से वज़ू करके चलते हैं। मस्जिद में बहुत भीड़ होगी।” तीनों वज़ू करके नमाज़ पढ़ने चले गए।

उनके जाने के बाद अम्मी, बहन और मैंने भी वज़ू किया और जानमाज़ बिछा लिए। इसमें काबा, मस्जिद बनी होती है और वह दरी जितना मोटा होता है, इसे लोग पाक मानते हैं। इसलिए इसी पर बैठकर नमाज़ अदा करने का बहुत पहले से ही रिवाज़ है। हम तीनों नमाज़ पढ़ने लगे। नमाज़ पढ़ने के बाद अम्मी ने बरतन धोए। पापा और दोनों भाई भी मस्जिद से नमाज़ पढ़कर आ गए। मैं छज्जे पर खड़ी होकर गली में बैडमिंटन खेलती लड़कियों को देखने लगी।

गली में बच्चे कई तरह के खेल खेल रहे थे। युवा लड़के भी अपनी-अपनी टोली के साथ जगह-जगह बैठे या खड़े बातें कर रहे थे। मेरा छोटा भाई गुफरान पापा से बोला, “हम भी जाएँ खेलने?” पापा नाराज़ होते हुए बोले, “यह भी कोई वक्त है खेलने का। चलो ऊपर जाकर नींद पूरी कर लो।” हम सब छत पर अपनी-अपनी जगह जाकर सो गए।

थीं

मेरी आँखें मक्खियों के भिनभिनाने और आँख पर बैठने से खुलीं। छत पर मैंने अपने आपको अकेला पाया। सूरज निकल चुका था। उसकी किरणें मेरे बिस्तर को छू रही थीं। मैंने जल्दी से बिस्तर समेटा और ज़ीने से उतरती हुई नीचे आ गई। कमरे में लाइट जलाई तो देखा सभी सो रहे थे। बस पापा नहीं थे। शायद दुकान चले गए थे। मैंने बिस्तर को कमरे के एक तरफ रखा। अभी सुबह के आठ बज रहे थे। मैं फिर से सो गई। अब मेरी नींद अम्मी के आवाज़ देने से खुली, “ज़ेबा उठ, देख दस बज गए हैं।” मैं जल्दी से उठ कर बाहर गई और हाथ-मुँह धोकर आई। अम्मी बोलीं, “रोज़ा लग रहा है क्या?” मैंने अपना सिर हिलाते हुए कहा, “नहीं, मुझे तो अपना पेट भरा-भरा लग रहा है।” यह सुनकर सभी हँसने लगे।

तभी मस्जिद से ऐलान हुआ, “मोहतरम हज़रात इफ्तार का टाइम हो चुका है। इफ्तार की दुआ पढ़ लीजिए।” आज चाँद कल के मुकाबले थोड़ी मोटी धारी में दिखाई दे रहा था।

कुछ देर तक हम यूँ ही बातें करते रहे फिर मैं बोली, “चलो लूडो खेलते हैं। कुछ तो टाइम कटेगा।” सभी तैयार हो गए। गुफरान दौड़कर लकड़ी की दराज़ से लूडो निकालकर ले आया। हम सब ज़मीन पर बैठकर खेलने लगे। हमें लूडो खेलते-खेलते तकरीबन एक घण्टा हो गया था। अम्मी बोलीं, “अब कितना खेलोगे? कुछ देर बैठकर पढ़ाई ही कर लो।” यह कहकर अम्मी इफ्तार के लिए चने और चने की दाल साफ करके भिगोते हुए आसना से बोली, “ले इसे छत पर फूलने के लिए रख आ।” आसना छत पर चली गई तो अम्मी ने मुझसे धोने के लिए गन्दे कपड़े माँगे। मैंने उन्हें कपड़े दे दिए। वह उन्हें धोने बैठ गई। तभी भाई इमरान बोले, “अम्मी मैं दुकान पर जा रहा हूँ। पापा ने बारह बजे बुलाया था।” यह कहकर वह ज़ीने से नीचे उतर गए।

गुफरान अकेला बेड पर लेटा हुआ था। भाई के जाते ही बोला, “अम्मी मैं भी खेलने जाऊँ।” अम्मी उसे मना करते हुए बोलीं, “नहीं, धूप बहुत तेज़ है। तुझे प्यास लगेगी। ऐसा कर, तू नहा ले।” वह नहाने के लिए बाथरूम में घुस गया। तभी अम्मी आसना से बोली, “जा, तू गुफरान के कपड़े निकालकर दे दे।”

एक बजकर पन्द्रह मिनट हो चुके थे। गुफरान बोला, “मेरी टोपी कहाँ है? मैं नमाज़ पढ़ने जा रहा हूँ।” मैंने उसकी टोपी ढूँढकर उसे दे दी। वह नमाज़ पढ़ने मस्जिद चला गया।

मैंने कँघी से बाल सुलझाए और चोटी बना ली। डेढ़ बज गया था। नमाज़ पढ़ने का टाइम भी। मैं दुपट्टा लेकर वज़ू बनाने चली गई। मैंने लोटे में पानी लिया और बिस्मिल्लाह पढ़कर तीन बार गट्टों तक हाथ धोए। तीन बार कुल्ली की। तीन बार नाक में पानी डाला। तीन बार मुँह धोया। तीन बार अपने दोनों हाथ धोए। फिर हाथ में पानी लेकर नीचे गिरा दिया। दोनों हाथों में पानी लेकर सिर को छूते हुए गले को धोया और एक-एक बार दोनों पैर धोए। जब वज़ू पूरा हो गया तो मैं उठी और दुपट्टे को सम्भालती हुई अन्दर

गई और उसे गोल-गोल घुमाकर सिर पर ओढ़ा। जानमाज़ बिछाकर नमाज़ पढ़ने लगी। जब मेरी नमाज़ पूरी हुई तो दो बज गए थे। तभी बहन और अम्मी भी वज़ू बनाकर आ गईं। वे भी नमाज़ पढ़ने लगीं।

पापा मस्जिद से नमाज़ पढ़कर वापस आए और बोले, “ज़ेबा कुरान तो देना।” मैंने उन्हें कुरान उतारकर दे दी और एक कुरान लेकर मैं भी पढ़ने बैठ गई।

अब तक ढाई बज गए थे। अम्मी और बहन ने भी नमाज़ पढ़ ली थी। मैंने अम्मी से कहा, “मैं ट्यूशन जा रही हूँ!” अम्मी बोली, “ठीक है, कुरान मुझे दे दे!” मैंने कुरान उठाकर उन्हें दे दी। तभी अम्मी पापा से बोलीं, “इमरान और गुफरान नहीं आए।” पापा ने कहा, “नहीं वे कह रहे थे कि कुरान पढ़कर वहीं मस्जिद में सो जाएँगे।”

अब पाँच बजने वाले थे। आसना और मैं बाज़ार के लिए निकल गए। शुक्रवार होने की वजह से बाज़ार में बहुत भीड़ थी। सभी रोज़ादारों को अपने जान-पहचानवालों और पास के रिश्तेदारों के घरों में भी इफ्तारी देनी होती है।

मेरी नज़र साज़ो-सामानों से लदी ठेलियों पर गई। ये खजूरवाले बस रमज़ान में ही क्यों आते हैं? पूरे ग्यारह महीने कहाँ गायब हो जाते हैं?

आज बाज़ार में सब्ज़ियों की ठेलियाँ कम और फल, खजूर, फैनी और बन की ठेलियाँ ज़्यादा दिखाई पड़ रही थीं। पहले हमने खजूर लिए और दूसरे सामानों के रेट पूछते हुए आगे बढ़ गए। छह केले और एक किलो आम खरीदे। हम कचरीवाले के पास गए। धीरे-से आसना का पल्लू खींचकर मैं बोली, “रेट ठीक से लगवा लेना!” लम्बीवाली कचरी लेकर सब्ज़ीवाली ठेलियों की तरफ चल दिए। वहाँ से हमने एक किलो आलू, एक किलो भिंडी, पकौड़े बनाने के लिए बैंगन और दो नींबू खरीदे। सारा सामान हाथ में लिए भीड़ को चीरते हुए हम घर आ गए।

साढ़े पाँच बज गए थे। मैं घर आते ही लेट गई। दूध लाने का टाइम भी होने ही वाला था। अम्मी इफ्तारी बना रही थीं। मैंने और आसना ने वज़ू बनाई और असर की नमाज़ पढ़ने बैठ गए। मैं नमाज़ पढ़कर उठी तो दूध लाने का टाइम हो गया था। मैंने डोलची उठाई और अम्मी से पैसे लेकर निकलने ही वाली थी कि दोनों भाई भी आ गए। मैंने गुफरान से कहा, “आज दूध तू ले आ।” पर वह तमककर बोला, “मुझे प्यास लग रही है। मैं कहीं नहीं जाऊँगा।” मैं दूध लेने चली गई।

साढ़े छह बज गए थे। आसना फल काट रही थी। अम्मी ने मुझसे कहा, “तू शर्बत बना ले।” मैंने छोटेवाले भगोने में पानी लेकर चीनी घोली और नींबू काटकर उसमें निचोड़ दी और ढँककर रख दिया। गुफरान अम्मी से फिर बोला, “अम्मी मुझे प्यास लग रही है।” अम्मी ने उसे प्यार से कहा, “रोज़े में बार-बार ऐसे नहीं कहते। अल्लाह मियाँ नाराज़ हो जाते हैं। बस थोड़ी देर और है, रोज़ा खुलने ही वाला है।”

भिगाए हुए चने और चने की दाल में आसना ने कटे हुए प्याज़ डाले और नींबू निचोड़कर, नमक डालकर एक तरफ रख दिया। अब तक अम्मी भी इफ्तारी बना चुकी थीं। इसमें कटे हुए फल और तली हुई कचरी भी थी। खाना भी बन चुका था। अम्मी ने लगे हाथों रसोई की धुलाई भी कर दी और वज़ू

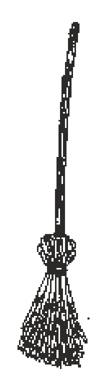

बनाकर इफ्तार के सभी फल और खजूर को परात में डाल दिया। कचरी और बैंगन के पकौड़े एक बड़ी-सी थाली में रख दिए। प्याज़ और नींबूवाले चने भी रख दिए। शर्बत में बर्फ डालकर दस्तरखान पर सजा दिए। तभी पापा आ गए। सभी वज़ू बना-बनाकर दस्तरखान को घेरकर बैठ गए।

सात बजकर पन्द्रह मिनट हो गए थे तभी मस्जिद से ऐलान हुआ, "मोहतरम हज़रात इफ्तार का टाइम हो चुका है। इफ्तार की दुआ पढ़ लीजिए।" सभी ने पाँच मिनट के अन्दर इफ्तार किया। शर्बत पीकर गला तर करने के बाद नमाज़ अदा करेंगे। इसके बाद ही खाना खाएँगे।

इफ्तार के बाद सभी पुरुष नमाज़ पढ़ने मस्जिद चले गए। महिलाओं और लड़कियों ने घर पर ही नमाज़ पढ़ी। मैंने नमाज़ पढ़कर दस्तरखान बिछा दिया। आसना खाना ले आई। मैं रसोई से गिलास, कटोरी, प्लेट और पानी लेकर आ गई। तब तक पापा और भाई भी मस्जिद से नमाज़ पढ़कर आ गए।

अम्मी ने सबके लिए खाना परोसा। सबने खाना खाया और छत पर चले गए। आज चाँद कल के मुकाबले थोड़ी मोटी धारी में दिखाई दे रहा था। मैं छत पर टहलने लगी तो मेरी नज़र गली के बाहरवाले पार्क पर पड़ी। वहाँ लड़के घूम रहे थे और गपशप कर रहे थे। हमारे घर के बराबरवाली ने अम्मी से पूछा, "कैसा बीता आपका आज का रोज़ा?" अम्मी बोलीं, "बस अच्छा ही बीता।" वे कुछ देर तक बातें करती रहीं। तभी हवा का झोंका आया और सबकी गर्मी उड़ा ले गया। इतनी अच्छी हवा चलता देख सब लेट गए और अगले दिन की सहरी के इन्तज़ार में सो गए।

ज़ेबा खातून, 13 साल, आठवीं, दो साल से अंकुर की नियमित रियाज़कर्ता हैं।

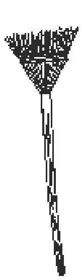

पूड़ियों की गठरी

(पेज 25 का शेष भाग)

तिजिया बेलती गई और बड़ी बहनजी सेंकती गईं। नौ बजे तक दो सौ से ज़्यादा पूड़ियाँ तैयार हो चुकी थीं। दोनों ने जल्दी-जल्दी पूड़ियों के चार गट्ठर बनाए। पलाश के पत्तों में हर गट्ठर को बाँधा और अन्त में एक बड़ी चादर से पूड़ियों की एक बड़ी-सी गठरी बना दी। गठरी के ऊपरवाले हिस्से में आलू की सब्ज़ी एक बड़ी-सी पुड़िया के रूप में पलाश के पत्तों मे लपेटकर रख दी थी। गठरी जैसे ही तैयार हुई, उसे सिर पर रखकर तिजिया बस स्टैंड की तरफ भागी। पीछे-पीछे बड़ी बहनजी भागीं। पन्ना होकर छतरपुर जानेवाली बस तैयार खड़ी थी। पूड़ियों की गठरी तिजिया ने दरवाज़े के पासवाली सीट के नीचे रख दी और खुद बड़ी बहनजी के साथ सीट पर बैठ गई। थोड़ी देर से बस चल दी। बेचारी तिजिया को यह भी नहीं पता था कि उसे बड़ी बहनजी के साथ चलना होगा। अफरा-तफरी में वे उसे बताना भूल गई थीं। वह सामान-बिस्तर कुछ भी नहीं लिए थी। पर बड़ी बहनजी के साथ होने का मतलब था कि किसी बात की फिक्र करने की ज़रूरत ही नहीं है! बड़ी बहनजी का सामान स्कूल की बस में जा चुका था।

अंतिम किस्त अगले अंक में।

बि	ज	ली		गु	ज	रा	त	
च्छु		प	हा	ड़			गा	ड़ी
	च	ना		ह	थ	क	ड़ी	
काँ	टा		गू	ल	र			धा
	ई	द			म	छु	आ	रा
क		स	र	क	स		का	
पा	सा		सी	प		अ	र	बी
स	र	ह	द			खा		क
	स			क	प	ड़ा		र

– पार्थ यादव, पाँचवीं, आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल

ऐसा कोई शख्स नज़र आ जाए जब
कान पे जिसका हाथ न हो
दाएँ बाएँ टहल-टहल के
खुद ही हँसता बोलता न हो
बिन मोबाइल खाली हाथ नज़र आ जाए कोई तो
खामख्वाह ही हाथ मिलाने को जी करता है

गुलज़ार

बोलीरंगोली

– नवांश, दसवीं, सनसिटी स्कूल, गुड़गाँव

अदिति साही, नवीं, डी.सी. मॉडल स्कूल पंचकुला, हरियाणा

शुभम राज, बाल भवन जबलपुर (म.प्र.)

बोलीरंगोली

ऐसा कोई शख्स नज़र आ जाए जब
कान पे जिसका हाथ न हो
दाएँ बाएँ टहल-टहल के
खुद ही हँसता बोलता न हो
बिन मोबाइल खाली हाथ नज़र आ जाए कोई तो
खामख्वाह ही हाथ मिलाने को जी करता है

गुलज़ार साब की इस कविता पंक्ति पर तुम्हारे तीन हज़ार से ऊपर चित्र मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा छह चित्र यहाँ पेश हैं। इन्हें भेजने वाले चित्रकारों को उपहार में चकमक डायरी अथवा किताबें भेजी जा रही हैं।

जे. दर्शना, आठवीं, डी.पी.एस.कोयम्बत्तूर

अनिशा पटनायक, नवीं, अनुभूति बाल भवन, बेंगलुरु

नवम्बर की कविता सुनो -

भूख लगी है चाँद तोड़ के फ़्राई कर लें
सूरज अण्डा छोड़ गया है ट्राई कर लें
- गुलज़ार

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 5 अक्टूबर तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

पता है -
चकमक,
एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16
(फोन - 09425010115)
चाहो तो ईमेल कर दो chakmak@eklavya.in

कुछ अन्य चित्र जो हमें पसन्द आए...

श्रेयसी, सातवीं, डी.पी.एस. पटना

पूर्णिमा.वी, पाँचवीं, डी.पी.एस.कोयम्बत्तूर

कृष्णा शाह, छठी, डी.पी.एस.
सूरत

रुद्राक्ष भायरे, आठवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

ऐसा कोई शख्स नज़र आ जाए जब
कान पे जिसका हाथ न हो
दाएँ बाएँ टहल-टहल के
खुद ही हँसता बोलता न हो
बिन मोबाइल खाली हाथ नज़र आ जाए कोई तो
खामख्वाह ही हाथ मिलाने को जी करता है

आयुष जयसवाल, सातवीं, के.वी. शाजापुर (म.प्र.)

बोलीरंगोली

के.मिथुन, सातवीं, डी.पी.एस.कोयम्बत्तूर

माथापच्ची

क्या तुम ऐसी पाँच सब्ज़ियों के नाम बता सकते हो जो ज़मीन के अन्दर उगाई जाती हैं?

1

एमिली के पास 4 बिल्लियाँ हैं – भूरे, ग्रे, काले और सफेद रंग की। भूरी बिल्ली ना तो सबसे बड़ी है ना ही सबसे छोटी। सफेद बिल्ली दो छोटी बिल्लियों में से एक है। काली बिल्ली सबसे बड़ी है। ग्रे रंग की बिल्ली अक्सर छोटी दो बिल्लियों को गुर्राया करती है। क्या इस जानकारी के आधार पर तुम बता सकते हो कि सबसे छोटी बिल्ली कौन सी है?

2

'अ' से चलकर 'अ' तक वापिस आने का सबसे सस्ता रास्ता कौन-सा होगा?

3

अण्डा उबालने पर कड़क क्यों हो जाता है?

4

तुम्हारे पास दो कप हैं। पहले कप में 1 लीटर सन्तरे का और दूसरे में 1 लीटर नींबू का रस है। पहले कप में से एक चम्मच रस लेकर नींबू के रस में मिला दिया गया है। और फिर उसी चम्मच से दूसरे कप में बने नए मिश्रण से एक चम्मच रस लेकर सन्तरे के रस में मिलाया गया है। अब सन्तरे के रस में नींबू के रस की मात्रा ज़्यादा होगी या नींबू के रस में सन्तरे के रस की?

5

यदि एक नल से 500 मिलीलीटर प्रति सैकेण्ड की रफ्तार से पानी आ रहा हो तो 10 लीटर की एक बालटी को भरने में कितना समय लगेगा?

जंगल में मंगल :
दो बहनों की मसाईमारा यात्रा

कमला भसीन

चित्र: बीना काक

मेरी बहन बीना को, जंगली जीवों के साथ वक्त गुज़ारने में बहुत मज़ा आता है। बीना जंगल जाने का कोई मौका नहीं छोड़ती है। जंगलों से बीना की दोस्ती कभी-कभी तो जुनून या पागलपन-सी लगती है।

हालाँकि मैं अपने घर और काम की ज़िम्मेदारियों की वजह से जंगल के लिए ज़्यादा वक्त नहीं निकाल पाती। पर जानती हूँ कि हम इंसान कुदरत पर निर्भर हैं, कुदरत हम पर निर्भर नहीं है। तो कुदरत से हमारा यही प्यार हमें हज़ारों किलोमीटर दूर केन्या के मसाई मारा आरक्षित जंगल ले गया।

हुआ यूँ कि...

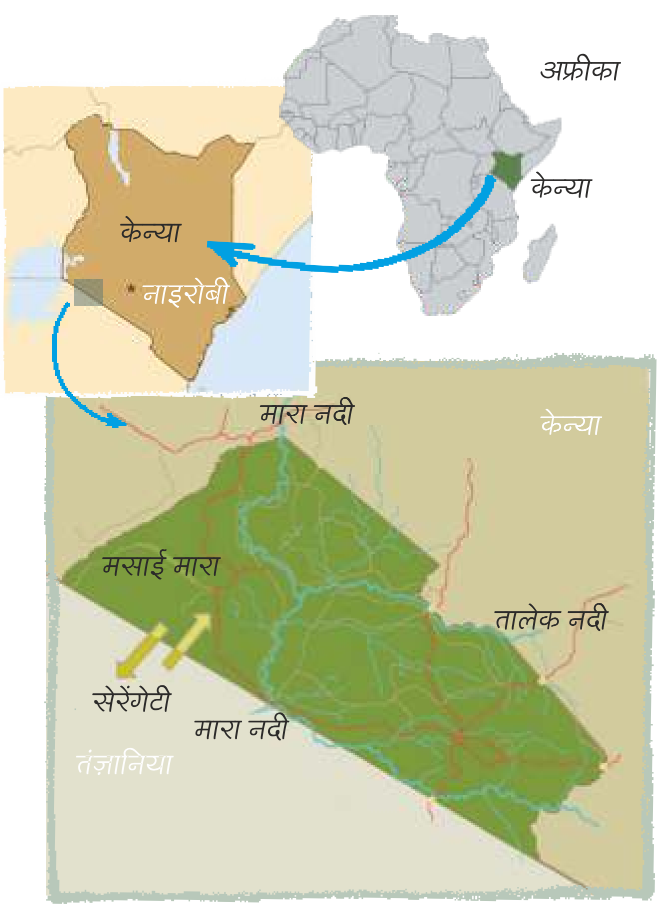

मसाई मारा जाने का ख्याल मेरी बहन बीना को आया। वह मुझसे छोटी है पर वैसे छोटी नहीं है। मैं 70 साल की हूँ और वह 60 की। हम दोनों के खूब अच्छे सफेद बाल हैं। काले बालवालों के बीच हम दूर से ही नज़र आ जाती हैं।

बीना को जंगल और जंगली जानवरों से इतना प्यार है कि उसने अपने शहर जयपुर से 150 किलोमीटर दूर बसे रणथम्भौर आरक्षित जंगल को अपना घर ही बना लिया है। जब दो-चार दिन मिलते हैं वहाँ चली जाती है। यहीं उसने जानवरों की तस्वीरें खींचना शुरू किया। फिर एक बढ़िया कैमरा लिया और उसकी बारीकियाँ सीखीं। अब वह अच्छी फोटो खींच लेती है।

कुछ दिन पहले बीना ने मुझे कहा, “चलो दीदी, केन्या चलते हैं।”

“केन्या? वहाँ क्यों? मैं तो तीन बार वहाँ हो आई हूँ।” मैंने जवाब दिया।

“तो क्या आप मसाई मारा गई थीं?” बीना ने मुझे छेड़ते हुए पूछा।

इधर ना में मेरा सिर हिला उधर जीवन में कुछ नया करने, नया सीखने, जानवरों से मिलने, उनकी फोटो खींचने पर बीना का लम्बा जोशीला भाषण शुरू हो गया।

उसे सुन मुझे वो ताव आया कि उसके भाषण को बीच रास्ते रोकते हुए मैंने कहा, “तो ठीक है, चलते हैं मसाई मारा। वैसे सिस्टर, मैं बता दूँ कि मुझे मेरे काम में भी बहुत मज़ा आता है और 45 साल काम करने के बाद भी रोज़ कुछ नया सीखती हूँ।”

इसके बाद तो बीना ने ज़रा देर नहीं लगाई। अपने जानकार मित्रों की सलाह से प्रोग्राम बनाया। जाने की तारीख भी तय हो गई – 15 जुलाई।

महा स्थानान्तरण : मसाई मारा का सालाना प्राकृतिक अजूबा

मसाई मारा जाने की तैयारी

हमें यह तो पता था कि केन्या जाने के लिए येलो फीवर का टीका लगाना पड़ता है। मगर इस बार बताया गया कि पोलियो ड्रॉप्स भी लेनी होंगी। और वह भी जाने के एक महीने पहले। केन्या के लिए वीसा दिल्ली में लिया जा सकता है या फिर नाइरोबी से भी। मुम्बई से नाइरोबी सीधे जाया जा सकता है। और दिल्ली से दुबई या अबुधाबी होकर भी।

केन्या में जुलाई-अगस्त में सर्दी होती है। वैसे भी मसाई मारा समुद्र तट से 1500 से 2180 मीटर ऊँचा है और वहाँ मौसम ठण्डा रहता है। सोच के ही बड़ी राहत मिली कि दिल्ली की गर्मी, उमस और प्रदूषण से कुछ दिन तो छुटकारा मिलेगा। थोड़ी और दिलचस्पी जगी तो मसाई मारा के बारे में जानने के लिए गूगल की शरण में जा पहुँची।

मसाई मारा नाम क्यों?

गूगल ने बताया कि यहाँ रहनेवाले मसाई लोगों की वजह से इसे यह नाम मिला। मसाई भाषा में मारा का मतलब है चितकबरा। यहाँ सैंकड़ों किलोमीटर तक घास के मैदान फैले हैं। बीच-बीच में कुछ पेड़ और झाड़ियाँ हैं। दिनभर बादलों की छाया इस इलाके को चितकबरा बनाए रखती है। मैंने सोचा हिन्दी वाला मारा होता तो गड़बड़ हो जाती।

मसाई समुदाय

मसाई लोग ग्वाले हैं। वे गाय पालते हैं मगर दूध, दही, घी के लिए नहीं, माँस के लिए। पर हाँ, ये खुद ज़रूर गाय का दूध पीते हैं। हमारे गाइड ने बताया कि मसाई लोग प्रोटीन पाने के लिए दूध में गाय का खून मिलाकर पीते हैं। मैंने मन में सोचा पसन्द अपनी-अपनी ख्याल अपना-अपना। हर जगह की अपनी ज़रूरतें, अपने तौर-तरीके। मसाई लोग छोटे-छोटे समूहों में बस्तियों में रहते हैं। यह इलाका शेर, तेन्दुए और चीते का भी है। हमारे गाइड के अनुसार शेर-चीते मसाई मारा में इंसानों के साथ ज़्यादा मारामारी नहीं करते हैं। हाँ, हाथी और जंगली भैंसे कभी-कभी इन पर और इनके घरों पर वार करते हैं। पर यह तभी होता है जब इन्हें इंसानों से खतरा महसूस होता है। मसाई महिलाएँ छोटे-छोटे मोतियों से चूड़ियाँ, हार, सजाने की चीज़ें आदि बनाती हैं। और आजकल पर्यटकों को बेचती हैं। हमने यहाँ कुछ छोटे स्कूल, अस्पताल और दुकानें भी देखीं।

छोटे बारह सीटोंवाले जहाज़ में हमें डर लग रहा था। हमारे जहाज़ की पायलट एक अश्वेत महिला थी।

मसाई मारा केन्या के दक्षिण-पश्चिम में 1510 वर्ग किलोमीटर में फैला है। यह केन्या के पड़ोसी देश तंज़ानिया के सेरेंगेटी आरक्षित क्षेत्र से जुड़ा है। 1961 में इसे आरक्षित क्षेत्र बनाया गया। मसाई मारा में मसाई शेर, अफ्रीकी तेंदुए और चीते बड़ी तादाद में हैं। दूसरे, यहाँ पर big five या पाँच बड़े (जानवर) – शेर, तेंदुए, हाथी, भैंसे और राईनोसोरस – बड़ी संख्या में हैं।

मसाई मारा की तीसरी खास बात यह है कि यहाँ पर हर साल एक प्राकृतिक अजूबा होता है। जुलाई व अगस्त के महीनों में जंगली जानवर भोजन (घास) व पानी की तलाश में तंज़ानिया के सेरेंगेटी इलाके से केन्या के मसाई मारा में आते हैं। यहाँ तीन-साढ़े तीन महीने रहकर, खा-पीकर, यहाँ की घास खतम करके वापिस तंज़ानिया लौट जाते हैं। बिना किसी पासपोर्ट-वीज़ा के। इसे the great migration (महा स्थानान्तरण) नाम दिया गया है। सोच सकते हो कितने जानवर यह यात्रा करते हैं? कुछ सौ हज़ार नहीं, बल्कि 21-22 लाख! इनमें होते हैं लगभग 13 लाख विल्डेबीस्ट या अफ्रीकी बारहसिंघे, 5 लाख हिरन, दो लाख ज़ेबरा आदि आदि। सोचो, क्या नज़ारा होता है! और इन जानवरों के शिकार की फिराक में कुछ शेर, लकड़बग्गे भी साथ हो लेते हैं। सब अपने खाने और जीवन की तलाश में। कौन जाने कौन ज़िन्दा बचेगा, कौन मरेगा!

मसाई मारा में दो नदियाँ बहती हैं - मारा और तालेक। इनके अलावा यहाँ कई नाले और छोटी नदियाँ भी हैं। इन्हीं से यह इलाका आबाद है। और लाखों जानवरों का चारागाह बना है। यहाँ हज़ारों मगरमच्छ और हिप्पोपोटेमस भी हैं। इस धरती पर जीवन ज़रूर यहीं शुरू हुआ होगा!

छोटा विमान पर अच्छी उड़ान

तो इसी अजूबे को देखने हम दो बहनें निकल पड़ीं। बीना जयपुर से और मैं दिल्ली से जहाज़ पकड़कर अबू धाबी पहुँचे। और वहाँ से इकट्ठे एक और जहाज़ में केन्या की राजधानी नाइरोबी पहुँचे। केन्या में हमें वीसा मिल गया। हम अपना सामान लेकर बड़े अन्तर्राष्ट्रीय हवाईअड्डे से छोटे हवाईअड्डे गए – मसाई मारा के लिए उड़ान भरने। मैंने बीना के दो सूटकेस देखे तो हैरान रह गई। इतना सामान सिर्फ सात दिन के लिए? पूछने पर पता चला कि एक सूटकेस में सिर्फ कैमरे और लैंस थे। तीन बड़े कैमरे और दो बड़े-बड़े लैंस। अच्छी तस्वीरें लेने के लिए यह सब ज़रूरी होता है, मैं भूल गई थी।

एक छोटा बारह सीटोंवाला जहाज़ हमें मसाई मारा के लिए ले उड़ा। इतने छोटे हवाईजहाज़ में हमें डर लग रहा था। पर जब ओखली में सर दिया ही था तो मूसल से क्या घबराना! हमारे जहाज़ की पायलट एक अश्वेत महिला थी। हमें उसे देखकर गर्व महसूस हुआ।

छोटे जहाज़ ज़मीन से ज़्यादा ऊँचे नहीं उड़ते। इसलिए हम नीचे का पूरा नज़ारा देख सकते थे। नाइरोबी शहर पार करने के बाद बहुत ही कम बस्ती थी। खाली मैदान थे। कहीं-कहीं कुछ छोटे घर और छोटी बस्तियाँ नज़र आईं। जैसे ही हम मसाई मारा के ऊपर पहुँचे हमें बहुत सारे जानवर दिखाई देने लगे। मेरी फोटोग्राफर बहन अपना डर वर भूलकर अपने मोबाइल से फोटो खींचने में लगी थी। जहाज़ में हमारी यात्रा बहुत ही अच्छी और बिना दचकोंवाली रही। हम बेकार ही डर रहे थे।

हमारा तम्बुओंवाला कैंप

हमारा जहाज़ मिट्टी के रनवे पर उतरा। हवाई अड्डे पर कोई इमारत नहीं थी। जहाज़ से सामान उतारकर सभी यात्रियों को वहीं पकड़ा दिया गया। हमें लेने हमारे कैंप से हमारे गाइड और ड्राईवर फ्रांसिस आए हुए थे। अगले छह दिन वे हमारे साथ रहे। वे हमें जंगल दिखाते हुए हमारे कैम्प ले गए। बहुत सारे ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के नीचे हमारा दस तम्बुओंवाला कैम्प था। इसके अलावा एक बड़ा तम्बू सबके खाने के लिए था। एक तम्बू में लाइब्रेरी थी और काम करने के लिए एक मेज़ था। इन दोनों तम्बुओं में मोबाइल और बैटरियाँ चार्ज करने के लिए बिजली के कनेक्शन थे। यहाँ सारी बिजली सौर ऊर्जा से पैदा होती है। कैम्प के आसपास कोई दीवार, तार या बाड़ नहीं थी। यह कैम्प भी जंगल का ही हिस्सा है। यहाँ हर तरह के जानवर आ सकते हैं, आते भी हैं। इसलिए हरेक को सतर्क रहना पड़ता है।

कैम्प चलानेवालों का कहना था कि जंगल में जंगल के कानून और तौर-तरीकों से रहना होगा। यहाँ इमारतें, दीवारें, तारें नहीं लगाई जा सकतीं। हम से एक फॉर्म पर दस्तखत भी कराए गए जिसमें लिखा था कि हम अपनी ज़िम्मेदारी पर इस कैम्प और जंगल में रहेंगे। यानी अगर मसाई मारा में हम मर-मरा गए तो कैम्पवालों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं होगी। एक बार तो वहाँ से भाग खड़े होने का दिल किया पर फिर चुपचाप दस्तखत कर दिए। हमारा तम्बू खासा बड़ा था। उसमें पाखाना, गुसलखाना, बिस्तर, सोफा, काम करने के लिए मेज़-कुर्सी, तम्बू के बाहर दो बरामदे सब थे।

कैम्प में हम सिर्फ सुबह की चाय और रात का खाना खाते थे। हम हर रोज़ सुबह छह-सात बजे के बीच एक बड़ी, मज़बूत और जंगल के लिए बनी जीप में निकल पड़ते थे और रात को सात बजे के आसपास लौटते। नाश्ता और दिन का खाना हमें साथ दिया जाता था। इस जीप में फोल्डिंग कुर्सियाँ-मेज़ भी थे। खाने के लिए फ्रांसिस हमें किसी सुरक्षित जगह पर ले जाते थे। कभी किसी पेड़ के नीचे, कभी किसी छोटी नदी के पास। हम इन तमाम इन्तज़ामात को देखकर बहुत हैरान और खुश थे। मैंने ज़िन्दगी में पहली बार ऐसा सब देखा था और उसका खूब मज़ा लिया।

कैम्प में हम सिर्फ सुबह की चाय और रात का खाना खाते और हर रोज़ सुबह छह-सात बजे के बीच एक बड़ी, मज़बूत जीप में निकल पड़ते थे और रात को सात बजे के आसपास लौटते।

मसाई मारा में पक्षी भी कुछ कम नहीं!

हमने बड़े-बड़े कानोंवाले अफ्रीकी हाथी, बड़े सींगोंवाले जंगली भैंसे, जंगली सुअर, लकड़बग्घे, खरगोश, नेवले, जिराफ भी बहुत सारे और बहुत बार देखे। जंगल के राजा शेर, तेन्दुए और चीते से मुलाकात का किस्सा आगे बताएँगे। एक जानवर जिसके दीदार बिलकुल नहीं हुए वह था राइनोसॉरस। इनके सींगों और शरीर से बननेवाली दवाइयों के चलते कुछ मुनाफाखोर इन्हें खत्म करते जा रहे हैं। और जिसके लिए यह सब हो रहा है पता नहीं वो दवाएँ सचमुच कितनी कारगर हैं! अब इन्हें बचाने की कोशिश लगातार की जा रही है।

सुबह जब हम निकलते तो खासी सर्दी होती थी। सो एक के ऊपर एक तीन-चार परतें पहनकर निकलते। दोपहर में उन्हें उतार देते। जिन्हें शाम होते ही फिर चढ़ा लेते। हम उगते सूरज को देखते हुए निकलते और डूबते सूरज के रंगों में रंगे हुए लौटते।

रात के खाने के समय हम सब दिन भर के देखे हुए को एक-दूसरे से साझा करते।

मसाई मारा का अद्भुत नज़ारा

मसाई मारा में जहाँ तक नज़र जाती सवाना (चारागाह) और उसमें हज़ारों जानवरों पर ही ठहरती। हमने इतने जानवर एक जगह पर कभी नहीं देखे थे। लगभग दो फुट ऊँची घास सूरज उगने पर सुनहरी हो जाती थी। इसमें हज़ारों विल्डेबीस्ट, ज़ेबरा, तरह-तरह के हिरन घास खाते, दौड़ते, खेलते रहते। इसका मतलब था कि महान स्थानान्तरण शुरू हो चुका था। अगले छह दिनों तक हम इस गज़ब के नज़ारे का मज़ा लेते रहे। फ्रांसिस जंगल के बारे में बताते रहे। उन्होंने बताया और हमने ज़ेबरा और अफ्रीकी बारहसिंघों को इकट्ठे चलते देखा। अलबत्ता, बारहसिंघे संख्या में पाँच से छह गुना थे। ज़ेबरा आगे चलते हुए घास का ऊपरी हिस्सा खा रहे थे। और उसका निचला हिस्सा बारहसिंघों और हिरन के हिस्से था। कमाल की साझेदारी थी!

मसाई मारा में पक्षी भी कुछ कम नहीं! इतने सारे और इतनी तरह के पक्षी कि हम दंग रह गए। सब से बड़ा परिन्दा जो हमने पहली बार देखा वह था शुतुरमुर्ग। क्या शानदार, लम्बा कद और मटकती चाल! इसके अलावा बहुत-से गिद्ध, तरह-तरह की चीलें, बगुले, किंगफिशर (किलकिला), दो तरह के सारस (एक तो कलगीवाला था) भी दिखे। और ये भी क्या खूब शिकारी हैं! एक बगुला साँप को पकड़े उड़ता दिखा तो एक मेंढक को दबोचे था। किंगफिशर तो मच्छियाँ पकड़ने में लगे ही रहते हैं। छोटी-छोटी पिद्दी-सी चिड़ियाँ कीड़े-मकोड़े नहीं छोड़तीं। प्रकृति में गज़ब की भोजन की लड़ी है – कोई किसी का भोजन, कोई किसी का। और भोजन की तलाश में जीने मरने के खेल साथ-साथ चलते रहते हैं।

(अगले अंक में जारी)

—कासिम, साढ़े चार साल, उड़ान लर्निंग सेंटर एवं स्कूल, नैन, हिमाचल प्रदेश

माँ के नाम चिट्ठी

मैं नालायक हूँ
और कामचोर भी
क्योंकि मुझे विश्वास है
कि तुम मुझे कोई भी आँच नहीं आने दोगी
और मुझ तक पहुँचने से पहले
मुसीबतों को तुम से होकर गुज़रना होगा
मुझ में पागलपन है
क्योंकि दूसरों से थोड़ा अलग हूँ मैं
गुस्सा भी है
पर वो तो तुमसे ही आया है
तुमसे चिढ़ जाती हूँ कभी-कभी
क्योंकि तुम्हारे सिवा किसी से चिढ़ने का
मुझे अधिकार है नहीं
मैं कहती नहीं
क्योंकि तुम्हारी जितनी हिम्मत नहीं मुझमें
कि अपना प्यार हर रोज़ जता सकूँ
और कह सकूँ
मैं तुमसे बहुत प्यार करती हूँ माँ

- गौरांशी चमोली, गणेशपुर, उत्तराखण्ड

मेरा पन्ना

स्कूल

स्कूल में अधिक पढ़ना पड़ता
इसलिए जाना अच्छा नहीं लगता
सुबह जल्दी उठना पड़ता
अलार्म हमको अच्छा नहीं लगता
काम ज़्यादा मिलने से खेल खेलना छोड़ना पड़ता
भारी लगता बैग हमारा
उठाना हमको पड़ता सारा
रात में जल्दी सोना पड़ता
बैड पर लेटकर रोना पड़ता
एक ट्युशन फिर दूसरा ट्युशन
घर जाओ तो होमवर्क का टेंशन
स्कूल हो सकता है अच्छा
पढ़ाई कम हो तो खेल सके हर बच्चा

—सेंट फ्रांसिस स्कूल लखनऊ के कक्षा पाँच के बच्चों की संयुक्त रचना

— गोपेश्वर बाल भवन, उत्तराखण्ड

जुलाई अंक में पानी बरसा रात में सलोनी राजपूत की मौलिक कविता थी। भूलवश इसे प्रस्तुति के रूप में दिया गया। -चकमक

स्कूल के दिन

चन्दन यादव

हमारे समय में, यानी आज से 40-45 साल पहले प्राइवेट स्कूल ना के बराबर हुआ करते थे। ज़्यादातर स्कूल सरकारी थे। उनमें दाखिले के लिए पैदा होने की तारीख का कोई लिखित प्रमाण नहीं देना पड़ता था। छह साल का होने पर पढ़ाई पहली से शुरू होती थी। बच्चा छह साल का हुआ कि नहीं, इसे नापने के लिए बाएँ हाथ को सिर के ऊपर से ले जाते हुए दाहिना कान पकड़ना होता था। जो बच्चा ऐसा कर पाता था, उसे छह साल का मान लिया जाता था।

पाँचवीं तक मैं घर के पासवाले सरकारी प्राथमिक स्कूल में पढ़ा। उस स्कूल के हैडमास्टर पिताजी के दोस्त थे। स्कूल में पहले दिन मेरे पिताजी मेरे साथ गए थे। उन दिनों जुलाई से नया शिक्षा सत्र शुरू होता था। कद-काठी को देखते हुए मुझे खींचतान कर छह साल का बता दिया गया था। जन्म तिथि लिखाई गई 1 जुलाई।

स्कूल के पहले दिन मैंने बरामदे से झाँककर पहली के कमरे को देखा। टाटपट्टी पर लाइन से बैठे हुए बच्चों से वह ठसाठस भरा हुआ था। उस समय मेरे दिमाग में दो बातें आईं। यहाँ खाली जगह तो है ही नहीं। मैं कहाँ बैठूँगा। किसके साथ बैठूँगा। इनमें मेरा तो कोई दोस्त नहीं है। तभी कमरे के अन्दर से आवाज़ आई, "चन्दन यहाँ आजा।" वो मेरे मोहल्ले का लड़का विनोद पारे था। उसके बुलावे से मुझे जो हिम्मत और हौसला मिला, उसे मैं अब भी महसूस कर पाता हूँ।

विनोद पारे मेरी गली में ही रहता था। पर वह मेरा दोस्त नहीं बन सका। हमारी हैसियत में अन्तर होने के कारण उसके परिवारवाले नहीं चाहते थे कि वो मेरी संगत में रहे। उसके पिता सरकारी नौकरी में थे, मेरे पिता बस ड्राइवर। वो पक्के घर में रहता था, मेरा घर कच्चा था। वो जात का बामन था और मैं पिछड़ी जाति का अहीर।

स्कूल में मेरी दोस्ती मुसलमानों और दलितों से हुई। गोलापुरा का हरिमोहन शर्मा भी दोस्त बना, क्योंकि वो दबंग था, और इसीलिए बुरा लड़का समझा जाता था। परवेज़ जो खिड़की कूदकर स्कूल से भाग जाता था, अब तक मेरा दोस्त है। मास्टरजी उसको पकड़वाने के लिए दो-चार तगड़े लड़के उसके पीछे लपकवाते थे। पर परवेज़ कभी किसी के हाथ नहीं आया। मुझे नहीं पता कि परवेज़ के बारे में बाकी बच्चे क्या सोचते थे। पर मैं सोचता था कि काश मैं भी इतनी हिम्मत कर पाता!

स्कूल की यूनिफार्म थी, खाकी हाफ पेंट और सफेद शर्ट। ये बने-बनाए नहीं मिलते थे। कपड़ा खरीदकर इन्हें सिलवाना होता था। पर यूनिफार्म पहनना ज़रूरी है, शिक्षकों का ऐसा आग्रह कभी नहीं रहा। फिर भी आधे से ज़्यादा बच्चे यूनिफार्म में ही स्कूल आते थे। कोई बच्चा दूसरों की तुलना में ज़्यादा सम्पन्न परिवार से है, इसका पता उसके कपड़े, बस्ते और टिफिन देखकर चलता था। प्लास्टिक का टिफिन, टेरिकॉट के कपड़े और दुकान से खरीदा बस्ता – जिसके पास ये होते उसका बाकियों पर रौब पड़ता था। इसलिए कि ज़्यादातर बच्चों के बस्ते पुराने कपड़ों को हाथ से सिलकर बनाए गए थैले हुआ करते थे। मेरा बस्ता भी ऐसा ही था। अब यह याद नहीं है कि मेरे बस्ते में क्या-क्या भरा होता था।

उस समय ज़्यादातर बच्चों के पास पैसे नहीं होते थे। सारे लेन-देन चीज़ें ले-देकर ही होते थे। डोल ग्यारस के बाद यह धँधा ज़ोरों से चलता था। गोलापुरा के लड़के डोल से निकली चमकीली रंगीन पन्नी, रंग-बिरंगे मोती, अलग-अलग आकार की लटकानेवाली गेंदें आदि लेकर स्कूल में आते थे। बाकी बच्चे बरतने (खड़िया) के बदले में इनका सौदा करते थे।

काले लम्बे और तगड़े घाघरे पंडिज्जी दो कारणों से याद हैं। एक तो यह कि वे बच्चों को बुरी तरह पीटते थे। दूसरा उनका सरनेम। घाघरा हमारे यहाँ पेटीकोट को कहते हैं। उनका लम्बा, ढीला पाजामा, मुझे वैसा ही लगता था।

मैं स्कूल में जो सीखने गया था, उससे जुड़ा कुछ भी सचमुच याद नहीं है। निश्चित रूप से मैंने पढ़ना-लिखना स्कूल में ही सीखा है। क्योंकि मेरी माँ और पिताजी अशिक्षित थे। पर सीखते हुए मैं क्या करता था, मेरे शिक्षक क्या करते थे, बोर्ड पर लिखाकर उतरवाते थे या गिनती और पहाड़े का सामूहिक गायन करवाते थे, कुछ याद नहीं है।

हाँ, पाँचवीं तक की पढ़ाई में मैंने ऐसा बहुत कुछ ज़रूर सीखा, जिसके नम्बर कोई भी स्कूल नहीं देता। मैंने मुसलमानों के धार्मिक क्रियाकलापों और उनके खान-पान को नज़दीक से देखा और उन्हीं से माँसाहार खाना सीखा। दलित दोस्त, जिनकी माँएँ गोलापुरा के किसानों के खेतों में मज़दूरी करती थीं, उनसे भेदभाव सहते हुए आगे बढ़ते रहने के लिए जूझना सीखा। बचपन में संगत की इस विविधता ने मुझे दूसरी जाति और धर्म के लोगों के साथ रहना सिखाया।

उन दिनों स्कूल के कमरे में धूप जब एक खास जगह पर पड़ती थी तब सामने की सड़क से पीले रंग की गजानन्द बस गुज़रती थी। उस धूप को देखकर समय का अन्दाज़ा लगाना ज़्यादातर बच्चों को आ गया था। क्योंकि यह स्कूल की छुट्टी होने का समय होता था। खुशी से किलकारी मारते हुए स्कूल से आज़ाद होने का समय।

चित्र : जोएल गिल

बरसाती संगीत सुनाते फूल

आलेख और चित्र
किशोर पँवार

पिछले साल मैंने एक छोटा-सा पौधा नर्सरी से खरीदा था। जुलाई के तीसरे-चौथे हफ्ते में उस पर सफेद फूल गुच्छों में खिले। ये बहुत ही सुन्दर थे। उसकी कलियाँ बहुत ही अनूठी थीं। कलियों की स्प्रिंग उम्र के हिसाब से धीरे-धीरे खुलती थीं। मुझे इसका नाम पता कुछ मालूम नहीं था। पर मेरी इसमें दिलचस्पी बढ़ती गई। और मैं लग गया इसकी तलाश में।

सबसे पहले गूगल से पूछा। पता चला कि यह एक किस्म का क्लेरोडड्रॉन है “क्लेलोडेन्ड्रॉन इन्सीसम”। बोलचाल में इसे म्यूज़िकल नोट्स कहते हैं। इसकी कलियों के आकार से ही इसे यह नाम मिला होगा। कलियाँ सिरे पर चपटी और पीछे से सीधी पतली नली जैसी होती हैं। ये संगीत के ऊँचे सुर के आठवें नोट की तरह नज़र आती है।

म्यूज़िकल नोट्स की झाड़ी कोई एक-डेढ़ मीटर ऊँची और लगभग इतनी ही चौड़ी होती है। इसके फूल सुबह-सुबह खिलते हैं। तभी शायद “मॉर्निंग किस” भी कहलाते हैं। फूलों से झाँकती लम्बी जामुनी वर्तिका के कारण कोई-कोई इसे “चुड़ैल की जीभ” भी कहते हैं।

क्लेरोडेन्ड्रॉन की अन्य प्रजातियों की तरह इनके पुंकेसर बहुत ज़्यादा लम्बे (लगभग छह सेंटीमीटर) होते हैं। संख्या में चार। इनके सिरों पर सुनहरे रंग के परागकण चिपके दिखाई देते हैं। सफेद रंग के लम्बे फूलों की नली से बाहर झाँकते ये पुंकेसर फूल की सुन्दरता में चार चाँद लगाते हैं।

लगभग 10 सेंटीमीटर लम्बी तुरही के आकार के ये फूल छोटी सफेद झक तितली जैसे लगते हैं। फूलों के गुच्छ यूँ दिखते हैं जैसे ढेर सारी तितलियाँ अपनी नलीदार सूण्डी फूलों का रस पीने के लिए खोल रही हों। खुशबू नहीं तो क्या हुआ इनके रंग क्या कमाल के हैं! जुलाई-अगस्त में झाड़ी के नीचे खिले फूल बर्फ की चादर का-सा अहसास कराते हैं।

मच्छर को मलेरिया

(पेज 13 का शेष भाग)

यानी वे सामान्य मच्छरों की अपेक्षा जल्दी मरते हैं। कई वैज्ञानिकों का कहना है कि यह तो परजीवी के दृष्टिकोण से ठीक नहीं है। क्योंकि परजीवी का भला तो इसी में है कि संक्रमित मच्छर लम्बे समय तक जीए ताकि वह मनुष्यों को काट-काटकर परजीवी को मनुष्यों के शरीर में पहुँचाता रहे। जल्दी मर जाएगा तो उसके साथ परजीवी भी तो मर जाएँगे।

वैज्ञानिकों ने देखा है कि परजीवी से संक्रमित होने के बाद वाहक जीव पर कुछ ऐसे असर होते हैं ताकि परजीवी का फैलाव अधिक से अधिक हो। यह परजीवी और वाहक के बीच लाखों वर्षों के सम्बन्ध का असर होता है।

मच्छरों के मामले में यह तो सही है कि संक्रमित मच्छरों की औसत आयु अन्य मच्छरों से कम होती है मगर कई अन्य ऐसे असर होते हैं कि परजीवी को लाभ मिलता है।

जैसे प्रयोगों से यह पता चला है कि कोई मादा एनॉफिलीज़ मच्छर (जो मलेरिया फैलाती है) जब किसी संक्रमित इंसान का खून पी लेती है तो उसमें "काटने की इच्छा" बढ़ जाती है – वह मनुष्यों को न सिर्फ ज़्यादा बार काटती है बल्कि हर बार लम्बे समय के लिए काटती है। यदि वह ज़्यादा बार काटेगी तो परजीवी ज़्यादा व्यक्तियों में पहुँचने की सम्भावना बढ़ेगी।

एक प्रयोग में यह भी देखा गया है कि संक्रमित मच्छरों में गन्ध की संवेदना बढ़ जाती है। और तो और, उनकी गन्ध की संवेदना में वृद्धि खास तौर से मनुष्यों की गन्ध के प्रति होती है। इसका मतलब यह हुआ कि संक्रमित मच्छर मनुष्यों को ज़्यादा आसानी से ढूँढ लेते हैं।

वैज्ञानिकों को लगता है कि ज़्यादा बार और ज़्यादा देर तक काटना तथा मनुष्य को आसानी से ढूँढ लेना है कि प्लाज़्मोडियम युक्त मच्छर ज़्यादा जोखिम उठाते हैं और कभी-कभी मारे जाते हैं। यानी ऐसे मच्छरों का जल्दी मरना परजीवी की करामात नहीं है बल्कि परजीवी के कारण मच्छर के व्यवहार में हुए परिवर्तन का एक अवांछनीय परिणाम है।

परजीवी द्वारा अपने मेज़बान के व्यवहार में ऐसे परिवर्तन अन्य जीवों में भी देखे गए हैं। उनकी बात फिर कभी करेंगे।

नवाब साहब और पेट का दर्द

हिमांशु बाजपेयी

एक नवाब साहब थे। वो अपनी नवाबी का चिराग अपनी बेगम के आँसुओं से रोशन करते थे। नवाब साहब दिन भर घर में पड़े-पड़े हुक्का गुड़गुड़ाया करते और बेगम गृहस्थी चलाने को मोहल्ले भर के कपड़े सिलतीं। घर का काम भी उन्हीं को करना पड़ता। बेगम समझा कर हार जातीं मगर नवाब साहब की नवाबी कम न होती। ज़रा-ज़रा सी बात पर चिल्लाना वे मर्दाना शान समझते थे। एक शाम बेगम सिलाई के काम से जैसे ही फारिग हुईं नवाब साहब ने उन्हें हलवा पकाने का हुक्म दिया। बेगम थकी हुई थीं, कुछ देर आराम करना चाहती थीं। उन्होंने नवाब साहब से धीमे लहज़े में थोड़ी देर सब्र करने की इल्तेजा की। अपने हुक्म की तामील में ताखीर नवाब साहब को कतई पसन्द नहीं थी। आग बबूला हो गए और कड़क लहज़े में बेगम से फौरन हलवा पकाने को कहा। बेगम ने फिर कहा कि बस अभी बनाए देती हूँ इक ज़रा दम तो लीजिए। अब नवाब साहब का गुस्सा आसमान पर पहुँच गया। और लगे ऊलजुलूल बोलने। मगर बेगम ने भी कुछ ठान ली थी। न उठीं तो न उठीं। उलटा नवाब साहब को जवाब और दे दिया कि ज़्यादा जल्दी हो तो खुद ही पका लीजिए। बस जवाब सुनकर नवाब साहब को आ गया ताव। घुस गए रसोई के अन्दर हलवा बनाने। पर बनाना तो आता नहीं था। सोचने लगे कि हलवा बनता कैसे है। ख्याल आया कि कुछ लिजलिजा-सा होता है। सो आटे में पानी मिला दिया और चूल्हा जलाकर कढ़ाई में उलटने-पलटने लगे। जब देखा कि हलवा नहीं बन रहा तो ऊँची आवाज़ में बोले, "अब मैं हलवा नहीं गुलगुले खाऊँगा।" इसके बाद उसी पानी मिले आटे से गुलगुले बनाने की कोशिश करने लगे। गुलगुले भी नहीं बने। फिर सोचा आटे के चिल्ले भी तो बन सकते हैं। बस पानी थोड़ा और मिलाना पड़ेगा। बेगम को सुनाते हुए बोले, "गुलगुले नहीं चिल्ले खाने का मन है।" मगर थोड़े के चक्कर में आटे में इतना पानी मिला दिया कि सब पानी पानी हो गया। अब नवाब साहब के छक्के छूटने लगे। चिल्ले भी गए। क्या किया जाए! जब कुछ नहीं समझ आया तो यकायक पेट पकड़कर पलंग पर औंधे मुँह जा गिरे और चिल्लाने लगे, "हाय अल्लाह!" बहुत ज़ोर का दर्द उठा है पेट में। चिल्ला गया भाड़ में। मुझसे कुछ न खाया जाएगा। बस किसी तरह सो जाऊँ के दर्द से निजात मिले। बेगम लेटे-लेटे पहले तो ये तमाशा देखती रहीं, फिर आँखें मूँद लीं। नवाब साहब काफी देर तक कराहते रहे। फिर चुपके से सर जो उठाया तो देखा कि सुबह की थकी-हारी बेगम अपने बिस्तर पर चैन की नींद सो रही थीं।

चित्रः प्रिया कुरियन

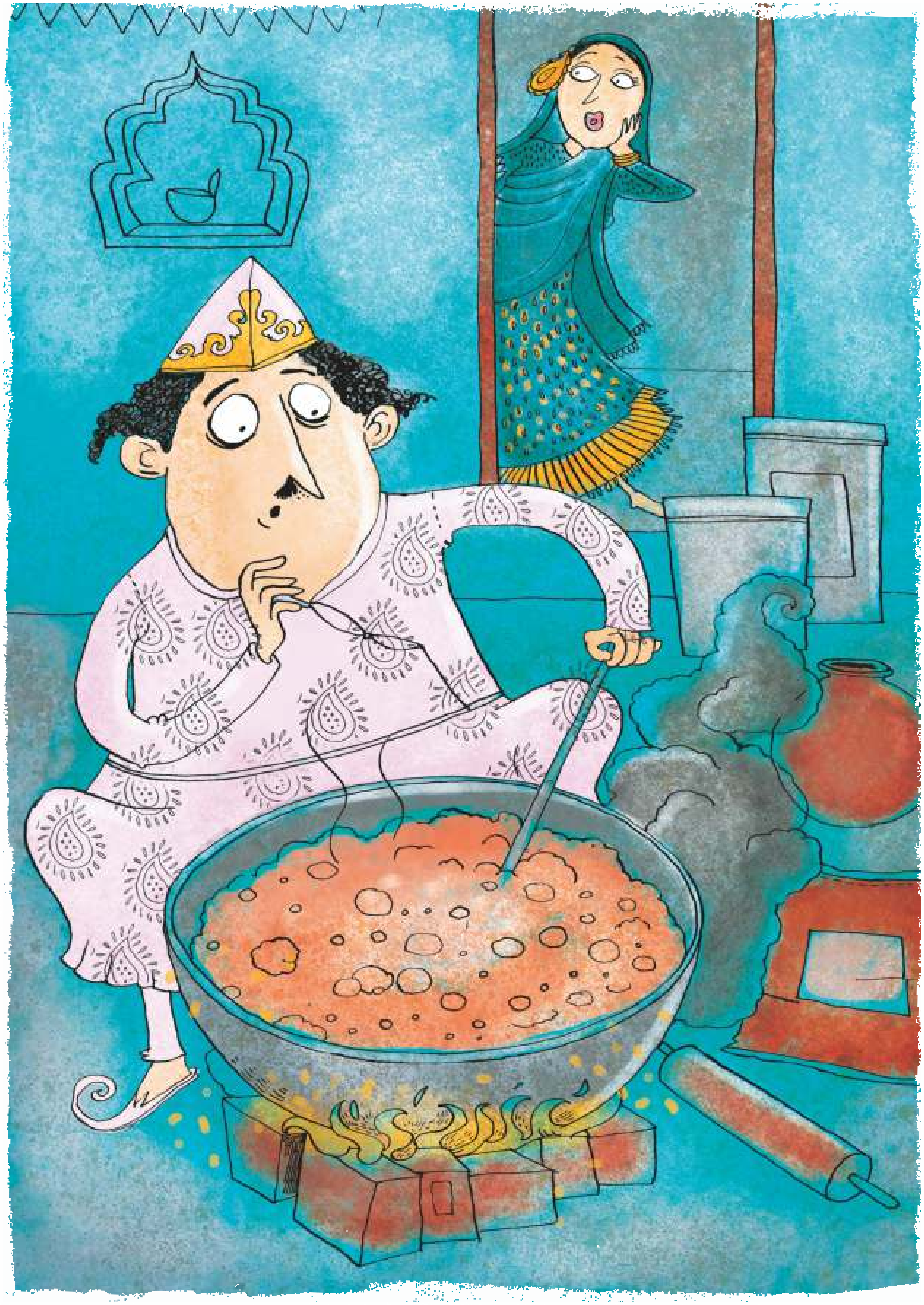

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./भोपाल/261/2015-17

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल